हिन्दू पानी-मुस्लिम पानी

असग़र वजाहत

बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति

परमहँस संत शिरोमणि ब्रह्मलीन बाबा हिरदाराम साहिब (पुष्करराज) जी के आशीर्वाद एवं परम श्रद्धेय सिद्ध भाऊजी की प्रेरणा से स्थापित बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति, जयपुर 'जन सहयोग से जन-जन तक पुस्तक' उपलब्ध कराने के 'गिलहरी प्रयास' को लेकर गठित की गई है।

सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपरक एवं समाज को प्रेरित-प्रोत्साहित, उद्वेलित करती पुस्तकें उनके सुधि पाठकों को न्यून मूल्य पर उपलब्ध हों, यह इस समिति का प्रयास है। जाहिर है, समिति की कोई भी गतिविधि किसी प्रकार का लाभ कमाने के उद्देश्य की नहीं है। इस उद्देश्य के तहत समिति स्वयं पुस्तक प्रकाशन के अतिरिक्त अन्य प्रकाशकों से भी उपयोगी पुस्तकें क्रय कर भी उपलब्ध कराने का मानस रखती है।

हमारे प्रयासों की श्रंखला में 'पाँचवीं पुस्तक' आपके हाथों में है।

हरगुन आसनदास नेभनानी	**गजेन्द्र रिझवानी**
अध्यक्ष	सचिव
93515-10909	**93145-07094**

हिन्दू पानी – मुस्लिम पानी

असग़र वजाहत
लेखक

डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
सम्पादक

बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति, जयपुर

आशीर्वाद की कामना
के साथ

हिन्दू पानी – मुस्लिम पानी

देश के ख्यातनाम साहित्यकार श्री असगर वजाहत के वैचारिक आलेखों, कहानियों का विशिष्ट संग्रह उनके विशिष्ट साक्षात्कार के साथ।

असगर वजाहत

वर्ष 2018

प्रकाशक

बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति

926–बी, ग्रीन हाऊस, जड़ियों का रास्ता,

चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003

मोबाइल : 93145–07094

E-mail : bhrpss@gmail.com

मुद्रक

दिव्य भारती पब्लिशिंग एजेंसी

चौड़ा रास्ता, जयपुर–3 (राज.)

मोबाइल : 99280–87094

E-mail : jprcomputer@gmail.com

विशिष्ट विक्रय मूल्य : ₹ **30** मात्र

समिति के सामाजिक प्रतिबद्धता कार्यक्रम के तहत प्रकाशित

आशीर्वाद
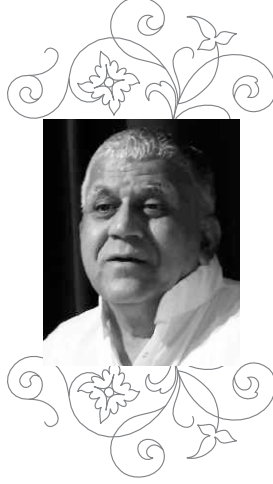
भाई असगर वजाहत की प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दू पानी – मुस्लिम पानी' उनकी साम्प्रदायिक सद्‌भाव की कहानियों का अनूठा संग्रह है। साम्प्रदायिक सद्‌भाव विषयक उनके वैचारिक लेख इस पुस्तक की महत्ता में वृद्धि तो करते ही हैं साथ ही उनका साक्षात्कार इस महत्वपूर्ण विषय को गरिमा प्रदान करता हुआ जिज्ञासु पाठकों की मानसिक क्षुधा को शांत करता है।

देखा जाए तो गंगा–जमुनी तहजीब वाले हमारे देश में साम्प्रदायिक सद्‌भाव के विचार, विकास व प्रयासों में वृद्धि की सख्त जरुरत है। इस प्रकार के प्रयासों में एक लेखक की भूमिका महनीय होती है तथा इस कटौती पर असगर वजाहत की प्रस्तुत पुस्तक खरी उतरती है। पुस्तक अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे इसी कामना के साथ।

गुरु महाराज का आशीष।

असगर वजाहत कहिन

भारत विभाजन से पहले साम्प्रदायिकता इतनी बढ़ गयी थी कि रेलवे स्टेशनों पर पानी पिलाने वाले हिन्दू पानी-मुस्लिम पानी की आवाज़ लगाते थे। साम्प्रदायिकता ने न केवल देश का विभाजन कर दिया था बल्कि धर्म के नाम पर राजनीति का एक ऐसा पौधा लगा दिया गया था जो विशाल काँटों का जंगल बन गया है। विभाजन के बाद दोनों देशों में साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं हुई बल्कि बढ़ गयी। आशा की जाती थी कि यदि द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को मान लिया जायेगा तो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बेहतर संबंध बनेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दरअसल उप-महाद्वीप के राजनीतिज्ञ यह समझ गये थे कि सत्ता प्राप्त करने के लिए सबसे सरल रास्ता साम्प्रदायिकता ही है और यही कारण है कि आज दोनों देशों में साम्प्रदायिकता का पूरा उत्थान देखा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारंभ में साम्प्रदायिकता विषयक कुछ लेख दिये गये हैं जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। इन लेखों का केन्द्रीय विषय साम्प्रदायिकता ही है लेकिन लेख किसी क्रम में नहीं हैं। कहानियाँ देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता को सामने लाती हैं।

कुछ बातें अपनी तरफ से

सन 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए प्रेमचंद ने जो वक्तव्य दिया था उसमें उन्होंने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही थी. उनके शब्द हैं, 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है. उसका दर्जा इतना न गिराइए. वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है. यह बात 1936 में जितनी सही और प्रासंगिक थी, उससे कई गुना ज्यादा सही और प्रासंगिक आज हो गई है. यह बात अलग है कि हमारे ही समाज में बहुत सारे लोग इस बात को ठीक से समझ नहीं पाते हैं. बहुत सारे लोगों के लिए साहित्य भी उसी तरह का एक कलाकर्म है जिस तरह का कलाकर्म संगीत, या चित्रकला या और कोई भी कलाकर्म हो सकता है. मेरे इस कथन से यह न समझ लिया जाए कि मैं साहित्य की तुलना में अन्य कलाकर्मों को कमतर साबित करने का प्रयास कर रहा हूँ. ऐसा बिल्कुल भी नहीं है. मेरे लेखे हर कलाकर्म समान रूप से महत्वपूर्ण है और हर कर्म का अपना वैशिष्ट्य है. कला चाहे वो एम.एफ. हुसैन की हो या बीथोवन की या शेक्सपियर की, हरेक की अपनी महत्ता है. इनमें से किसी को भी किसी दूसरे की तुलना में छोटा या बड़ा नहीं कहा–माना जा सकता. लेकिन इसी के साथ इस बात को भी स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि हर कला विधा का अपना स्वभाव होता है. बेशक, समर्थ कलाकार उसका अतिक्रमण भी करते हैं. जैसे कोई पिकासो कभी 'गुएर्निका' बना देता है तो कोई इकबाल बानो 'हम देखेंगे' गाकर सत्ता को खुली चुनौती दे देती हैं. ऐसे अनगिनत उदाहरण दिये जा सकते हैं. लेकिन इन सारी कलाओं से साहित्य इस मामले में थोड़ा भिन्न है कि उसका ताल्लुक शब्द और विचार से है और इनकी वजह से यहाँ अपनी बात कहने का, खुलकर कहने का, और जो अनुचित लगे उसका प्रतिवाद करने का अवसर ज्यादा होता है. अपने उपर्युक्त भाषण में ही प्रेमचंद ने एक और बहुत खास बात कही थी. प्रगतिशील लेखक संघ – इस नाम पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा था, 'साहित्यकार या कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है. अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता. उसे अपने अंदर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी. इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है. अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती. इसलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्था से उसका दिल कुढ़ता रहता है. वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अंत कर देना चाहता है, जिससे दुनिया जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाए. यही वेदना और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाए रखता है.'

एक बार फिर कहना पड़ रहा है कि प्रेमचंद की यह बात भी 1936 की तुलना में आज और ज्यादा प्रासंगिक हो गई है. इसलिए हो गई है कि आज सत्ता और राजनीति ने जिस तरह हमारे पूरे जीवन को आच्छादित कर लिया है और जिस तरह इनका कुरूप चेहरा हर रोज हमारे

सामने आ रहा है, उस पूरे माहौल में यह बहुत जरूरी हो गया है कि साहित्यकार अपने उपर्युक्त दायित्व का निर्वहन करे. वह समाज को मशाल दिखाए. सुखद यह है कि एक तरफ जहाँ आज की राजनीति समाज को बुरे दिनों की तरफ धकेलने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है, वहीं दूसरी तरफ हमारे समझदार और सजग रचनाकार पूरी निष्ठा से समाज को सही मूल्य देने के अपने दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं. बेशक साहित्य के पास कोई सीधी शक्ति नहीं होती है कि वह हमारे कष्टों का निवारण कर दे, या हमें अपनी यातनाओं से मुक्ति दिला दे, लेकिन चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में रखने का जो काम साहित्य करता है वह केवल और केवल साहित्य ही कर सकता है. और यह काम आज का साहित्य बखूबी कर रहा है.

आज के समय में जो साहित्यकार अपने पूरे दमखम के साथ साहित्यकारोचित दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं उनमें एक चमकता हुआ नाम है असगर वजाहत का. असगर वजाहत यों तो सही मायनों में बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार हैं; उन्होंने कहानी उपन्यास, नाटक, यात्रा वृत्तांत और इनसे इतर भी अनेक विधाओं में खूब सारा काम किया है और उस काम को खूब सराहा भी गया है; अधिकांश विद्वान उन्हें मुख्यत: एक कहानीकार मानते हैं. उनकी पहली कहानी 1964 में प्रकाशित हुई थी और तब से वे अनवरत सृजनरत हैं. लेकिन उनके सृजन की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वे अपना साँचा बनाते हैं और फिर खुद ही उसे तोड़ कर नए साँचे का निर्माण करने लग जाते हैं. उनके अब तक प्रकाशित कहानी संग्रहों की कहानियों का रूप वैविध्य हमें चकित और चमत्कृत करता है. युवा कथाकार पल्लव ने उनकी कहानियों के लिए बहुत सही कहा है कि असगर वजाहत ने कहानी लेखन के लिए जो शैली आम तौर पर चुनी है वह है तीखे व्यंग्य के साथ वर्तमान की जटिलताओं का निरुपण बहुत थोड़े शब्दों में कर देना. अपनी बहुत सारी कहानियों में वे साम्प्रदायिकता की समस्या से जूझते दिखाई देते हैं, लेकिन यह बात मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहूँगा कि ऐसा करते हुए वे सरलीकरण से बचते हैं और चीजों को नए और सार्थक नजरिये से देखते–दिखाते हैं.

हमें लगता है कि आज के भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या बढ़ता हुआ साम्प्रदायिकरण है. आज की टुच्ची राजनीति ने इसी बात में अपना हित समझ लिया है कि देश के दो बड़े सम्प्रदायों को एक दूसरे के सामने ला खड़ा किया जाए. उनमें जहाँ जहाँ सद्भाव नजर आए, उसे वैमनस्य में तब्दील किया जाए. दुर्भाग्य की बात यह है कि राजनीति अपने इस धत्कर्म में सफल होती नजर आ रही है. और यही वजह है कि हमें अपने इस प्रकाशन के लिए असगर वजाहत की साम्प्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ सर्वाधिक उपयुक्त लगीं. मैं अपने युवा लेखक मित्र और बनास जन के यशस्वी सम्पादक डॉ. पल्लव का विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने हमें असगर वजाहत की कहानियाँ और अन्य सामग्री सुलभ कराईं. इस सामग्री का उपयोग करने की अनुमति प्रदान करने की असगर वजाहत साहब की उदारता के प्रति हम सब नतशिर हैं.

अपने पाठकों से हमारा यही अनुरोध है कि कृपया इन कहानियों (व अन्य सामग्री) को खुद तो पढ़ें ही, अपने अन्य मित्रों–परिजनों को भी जरूर पढ़वाएँ. ऐसा करके ही हम अपने नागरिक धर्म का समुचित निर्वहन कर सकते हैं.

– डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
वरिष्ठ साहित्यकार
उपाध्यक्ष, बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति

प्रकाशकीय

अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वहन करते हुए 'सबके लिए पुस्तक' लक्ष्य के तहत *बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति, जयपुर* द्वारा प्रकाशित उपयोगी एवं प्रेरणास्पद पुस्तकों की श्रृंखला में डॉ. वीरेन्द्र सिंह लिखित 'गांधी मार्ग' श्री गिरीश पंकज लिखित 'एक गाय की आत्मकथा', श्री अनुपम मिश्र लिखित 'आज भी खरे हैं तालाब' और श्री शंकर मंशानी द्वारा लिखित 'संत कंवरराम : 75 प्रेरक प्रसंग' के बाद श्री असगर वजाहत द्वारा लिखित 'हिन्दू पानी – मुस्लिम पानी' आपके हाथों में प्रदान करते हुए हमें अत्यंत खुशी हो रही है।

समिति द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय समिति के उपाध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल और देश की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका दिल्ली से प्रकाशित बनासजन के सम्पादक श्री पल्लव जी को जाता है, जिन्होंने भाई असगर वजाहत जी की पुस्तक 'हिन्दू पानी – मुस्लिम पानी' की प्रकाशन प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाई और हमें इसके प्रकाशन के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित किया। सच में, बहुत ही कम पुस्तकें होती हैं, जिन्हें अधिक से अधिक पढ़े जाने की जरुरत होती है और यह पुस्तक उन्हीं में से एक है।

'सबके लिए पुस्तक' की ध्येय यात्रा बड़ी धीमी चल रही है लेकिन यह हमारे लिए आत्म संतुष्टि का विषय है कि अब तक प्रकाशित चारों पुस्तकें अपने लक्ष्य और उद्देश्य पर खरी साबित हुई हैं और यही हमारी सफलता भी है। परमहँस संत शिरोमणि ब्रह्मलीन बाबा हिरदाराम साहिब (पुष्करराज) की परम कृपा और परम श्रद्धेय सिद्ध भाऊ साहिब के आशीर्वाद से हम अपने कार्य में समर्थ सफल हों, इससे अधिक हमें और क्या चाहिए।

सबका भला करो भगवान।

हरगुन आसनदास नेभनानी
अध्यक्ष

गजेन्द्र रिझवानी
सचिव

अनुक्रम

वैचारिक पृष्ठभूमि :

कहानियाँ :

परिशिष्ट :

वैचारिक पृष्ठभूमि

सांप्रदायिकता : पुनर्विचार की जरुरत

सांप्रदायिकता के संबंध में बुनियादी अवधारणा तथा उसके स्वरूप को सही परिप्रेक्ष्य में न समझ पाने के कारण सांप्रदायिकता के विरुद्ध छेड़ा गया अभियान एक अर्थ में विफल हो गया है। पूरी समस्या पर सिरे से विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले सांप्रदायिकता को परिभाषित किया जाए। किसी संप्रदाय विशेष में दूसरे संप्रदाय विशेष के लिए धार्मिक विश्वासों या इतर कारणों से घृणा, द्वेष तथा हिंसा की भावना का प्रदर्शन सांप्रदायिकता कही जायेगी। हमारे देश में चूंकि यह स्थिति कुछ हिन्दुओं और कुछ मुसलमानों के बीच रही है इसलिए सांप्रदायिकता को हिंदू और मुस्लिम सांप्रदायिकता खानों में विभाजित किया गया था। यह भी तय है कि किसी भी सांप्रदायिकता का आधार केवल संकीर्ण मनोवृत्ति, द्वेष, घृणा, हिंसा जैसे विचारों को माना जाता है इसलिए किसी भी व्यक्ति या दल के लिए यह सरल होता है कि वह अपने बयानों, वक्तव्यों या विचारों को बदल दे और असांप्रदायिक हो जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि सांप्रदायिकता का कोई ठोस आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक आधार नहीं माना गया उसे केवल बयानों वक्तव्यों आचरण तक सीमित कर दिया गया। जबकि ऐसा नहीं है।

साम्प्रदायिक शक्तियों की रणनीति पर यदि विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आजादी के बाद मुस्लिम विरोध का स्वर राष्ट्रीय संस्कृति वाद में इस तरह ढाल दिया गया है कि उसे व्यापक समर्थन मिल गया। सांप्रदायिक शक्तियों ने धर्म–निरपेक्षता को तुष्टिकरण करके खारिज कर दिया और सांप्रदायिकता को अपने विरोधियों के एक ऐसे नारे में बदल दिया जिसका उद्देश्य केवल सत्ता में प्राप्त करना बताया गया। इस तरह लोकतांत्रिक और वामपंथी राजनीतिक शब्दावली से दो शब्द हटा ही दिए गये। इससे पहले कि लोकतांत्रिक वामपंथी ताकतें कुछ सोच–समझ पातीं राष्ट्रीय संस्कृतिवाद से हल्ला बोल दिया गया। अब स्थिति यह है कि धर्म निरपेक्षता चलती नहीं और सांप्रदायिकता विरोध केवल एक खोखला नारा होकर रह गया है। 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' जैसे नारे अधूरे हैं और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का जवाब नहीं हो सकते, कांग्रेस और वामपंथी दलों के पास राष्ट्रीय संस्कृतिवाद की टक्कर में कुछ नहीं है क्योंकि उन्होंने सांप्रदायिकता को पूरे सामाजिक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करके सैद्धांतिक आधार विकसित नहीं किए हैं। जिस गति से विकास होना चाहिए था, संस्थाओं का निर्माण और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं का

विकास होना चाहिए था लोकतांत्रिक माहौल बनना चाहिए वह नहीं बन सका। यानी सांप्रदायिक शक्तियों को लोकतांत्रिक चुनौती नहीं मिल पाई। यदि लोकतांत्रिक वामपंथी शक्तियाँ कोई ऐसा एजेंडा सामने लातीं जिससे हमारी जर्जर समाज व्यवस्था हिल जाती और आगे बढ़ने के रास्ते साफ नज़र आते, जनहित सर्वोत्तम ठहराया जाता तो सांप्रदायिक शक्तियाँ मंदी पड़ती। उदाहरण के लिए कांग्रेस राजीव गांधी के समय में यह कह सकती थीं कि कांग्रेस ने 1952 मे ग्रामीण क्षेत्राों की ज़मीदारी खत्म की थी और 1985 में शहरी क्षेत्रों की 'ज़मीदारी' खत्म कर रही है। यदि यह नारा दिया गया होता और इस पर प्रभावकारी ढंग से काम किया गया होता तो जनता के जीवन स्तर और सरकार के संसाधनों में बढोत्तरी होती और राष्ट्रीय बहस लोकतांत्रिक वामपंथी दलों के हाथ में रहती। न्याय व्यवस्था में आमूल परिवर्तन, सरकारी कर्मचारियों को जवाबदेही के घेरे में लाना, भ्रष्टाचार उन्मूलन के परिणाम देने वाले कार्यक्रम, प्रशासन को संवेदनशील और भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाना, शोषण के नये तरीकों को खत्म करना आदि ऐसे काम हो सकते थे जो समाज की पूरी धारा को मोड़ देते और उस वातावरण में कोई राम मंदिर और बावरी मस्जिद की बात सुनने पर तैयार न होता। लेकिन हम सब जानते हैं ऐसा नहीं हुआ। यदि कुछ किया भी गया तो वह छद्म था और उसका कोई प्रभाव लोगों के जीवन पर नहीं पड़ा। लोकतांत्रिक और वामपंथी दल इमरजेंसी के बाद वैचारिक रूप से दीवालिए हो चुके थे। इमरजेंसी से कोई सहमत नहीं हो सकता पर इतना तय है कि सरकार यदि दृढ़ता से कुछ करना चाहती है तो कर सकती है बशर्तें कि लोग उसके पीछे हों और उद्देश्य सही हो तथा परिणाम जनहित में निकल रहे हों।

आज स्थिति भयावह है। साम्प्रदायिक शक्तियाँ न केवल राजसत्ता में हैं बल्कि इतनी सशक्त हैं कि संसद, सुप्रीम कोर्ट तक की अवहेलना कर सकती हैं, न केवल उनके पास अपार धन है बल्कि अपार बल भी है। यही नहीं उनके पास चतुराई और चालाकी भी है। विपक्ष या लोकतांत्रिक और वामपंथी दलों के पास न तो इतने साधन हैं और न कोई ऐसी प्रभावकारी रणनीति है जो सांप्रदायिक शक्तियों का सामना कर सकें हो सकता है सांप्रदायिकता से लड़ाई एक हारी हुई लड़ाई हो। फिलहाल वस्तुस्थिति यही है। इसका सबसे बड़ा कारण कांग्रेस का वैचारिक दीवालियापन और वाम की निष्क्रियता है।

सत्ता में रहते हुए दक्षिणपंथी ताकतें शायद उतनी खत़रनाक न हो सकें जितनी वे विरोधी दल के रूप में हो जायेंगी, गुजरात के चुनावों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सांप्रदायिक ताकतें अपने फंडे तले बहुसंख्यक समाज को ला सकती है। इस कारण सबसे पहले तो मैं शक्तियाँ चुनाव के माध्यम से ही सत्ता में आने लगातार बने रहने का प्रयास करती रहेंगी और अपना फासीवादी एजेंडा लागू करती रहेंगी। यदि यह संभव न हो पाया तो वे शक्ति प्रदर्शन और प्रयोग कर राजसत्ता हासिल करेंगी। विश्व के इतिहास में यह कोई

अवहोनी घटना न होगी, एक करोड़ लोग संसद को घेर सकते हैं। सरकार से इस्तीफे लेकर अपने पसंद की सरकार और नया संविधान बना सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि खतरा फासीवादी दल से नहीं बल्कि फासीवादी दल के व्यापक जन–समर्थन से पैदा होता है।

आज देश की अर्थ व्यवस्था पूरी तरह अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गिरत में आ चुकी हैं। पन्द्रह–बीस वर्ष पहले जो आर्थिक सुधार सरलता से किए जा सकते थे वे अब नहीं हो सकते। लगता यह है कि सरकार चाहे जिस दल की हो आर्थिक नीतियाँ पूँजीवाद के हित में रहेंगी। ऐसी स्थिति में वर्तमान सामाजिक ढाँचा जस का तस रहेगा ओर उसका पूरा लाभ दक्षिणपंथी सांप्रदायिक राजनीति को मिलता रहेगा। विश्व पूँजीवाद की रुचि भारत की समस्याओं के समाधान में नहीं बल्कि भारत जैसी विशाल बाज़ार पर अपना अधिकार जमाये रखने की है जिसके लिए केवल इतनी शांति की आवश्यकता पड़ती है कि लोग बेचने–खरीदने की स्थिति में बने रहें। इस तरह भारतीय समाज की सांप्रदायिकता विश्व पूंजीवाद के रास्ते में नहीं आती। विश्व पूंजीवाद सांप्रदायिक शक्तियों को अपना एजेंडा लागू करने की पूरी छूट देता है। यह भारतीय सांप्रदायिक राजनीति को विश्व पूंजीवाद का समर्थन है।

प्रश्न यह पैदा होता है कि ऐसी भयावह स्थिति में लोकतांत्रिक वामपंथी शक्तियाँ, फासीवाद से, जो अब तक लोकतंत्रा के छद्म रूप में मौजूद हैं, कैसे संघर्ष कर सकती हैं? सबसे पहले वैचारिक दीवालिएपन से निकलना होगा। कांग्रेस को एक जीवंत और गतिशील नेतृत्व और कार्यक्रम की आवश्यकता है। सोनिया गाँधी या प्रियंका गाँधी से काम नहीं चलेगा। वामपंथी राजनीति को भी नयी परिस्थितियों में अपनी नयी रणनीति तय करनी होगी और केवल जोड़–तोड़ की राजनीति में लगे आधारहीन और चुके हुए नेतृत्व से अपना पीछा छुड़ाना पडेग़ा।

दरअसल सांप्रदायिकता से संघर्ष एक राजनैतिक संघर्ष है। अब तक हम इसे सामाजिक–सांस्कृतिक संकट के रूप में देखते आये हैं यही कारण है किसी लोकतांत्रिक वामपंथी दल ने सांप्रदायिकता को कभी गंभीरता से नहीं लिया। वापमंथी दलों ने तो 'सहमत जन नाट्यमंच, जनवादी लेखक संघ, इप्टा जैसे सांस्द्धतिक संगठनों के कमजोर कंधों पर इसका पूरा भार डाल दिया और सिर्फ पीठ थपथपाने का काम करने लगे।

लोकतांत्रिक और वामपंथी शक्तियों को कुछ निकट आकर प्रभावकारी और परिणामकारी राजनीति करनी होगी। अब तक देश की राजनीति का स्वरूप एकांगी है। सरकार के समांतर संगठनों का बनाया जाना, उसमें लोगों की भागीदारी और उसे परिणामकारी बनाने से ही लोगों का विश्वास जीता जा सकता है; सही मुद्दे सामने आ सकते हैं, लोगों के जीवन में परिवर्तन की लहर आ सकती है। लेकिन यह हिमालय की चोटी फतेह करने वाला काम कठिन और गंभीर है इस पर राष्ट्रीय परिसंवाद की आवश्यकता है। ❑❑❑

भारत का विभाजन एवं देश की वर्तमान राजनीति

विषय प्रवेश संबंधी पूर्व पीठिका के संदर्भ में अपने विचारों को क्रम में रखने के लिए सबसे पहले मैं दो मूल शब्दों पर विचार करना चाहूँगा। 'देश' क्या है और देश का हित अर्थात् जनता का हित किसमें है? क्या देश मात्रा भौगोलिक इकाई है? यदि हम कहें कि हाँ, तो इसका मतलब हुआ कि हमें न तो देश के लोगों की चिंता है और न प्रकृति का ध्यान है। हम केवल एक यू-खंड को देश मानते हैं और चाहते है कि वह सुरक्षित रहे। साबुत रहे। खण्डित न हो। लेकिन ऐसा नहीं है। देश का अर्थ है देश में रहने वाले लोग, देश की संस्कृति, इतिहास, भूगोल और भविष्य। इसलिए जब भी भारत की चर्चा की जानी चाहिए तो वह यू-खण्ड वाली परिकल्पना से व्यापक होनी चाहिए। अब दूसरी परिभाषा देने की आवश्यकता है। देश का अर्थात् जनता का हित किसमें है? मैं कहता हूँ जनता का हित 'क' में है, आप कहते हैं 'ख' में है। कोई और कहता है कि 'ग' में है। तो क्या जनता के हित इतने अस्पष्ट हैं? नहीं ऐसा नहीं है। जनता के हित और देश के हित अस्पष्ट नहीं हैं। जनता को जीवित रहने का अधिकार मिलना चाहिए जिसके लिए नौकरी या काम का अधिकार अनिवार्य है। जनता को स्वास्थ्य सेवाएँ चाहिए, जनता को शिक्षा का अधिकार चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि देश से प्रेम करने वाले कथाकथित भारतप्रेमी काम के अधिकार, स्वास्थ्य सेवाओं तथा शिक्षा के मुद्दों को लेकर कभी कोई रथ यात्राा नहीं निकालते हैं।

ऐसी स्थिति में यह जानना आवश्यक है कि भारत से प्रेम करने वालों का 'एजेंडा' क्यों सीमित है? उनकी नज़र में देश की सबसे बड़ी समस्या गरीबी, भूखमरी, अपराध, भ्रष्टाचार नहीं है बल्कि 'कामन सिविल कोड' है। वे देश के कमजोर वर्गों के उत्थान पर ध्यान नहीं देते बल्कि 'अखण्ड भारत' का सपना दिखाते हैं। वे देश में रहने वाले सभी लोगों को हिंदू मानने पर बल देते हैं पर उनकी समस्याओं से आँखें बंद कर लेते हैं? यह कैसा देशप्रेम है?

मेरे विद्वान मित्रों, अंग्रेजों ने भारत का विभाजन कर दिया और हमने उसे स्वीकार कर लिया। इस विभाजन को स्वीकार करने के पीछे क्या यह मंशा नहीं थी कि इसके कारण एक धर्म विशेष तीन भागों में बाँट कर अपनी शक्ति खो देगा? विभाजन को स्वीकार करने के पीछे क्या यह उद्देश्य नहीं या कि भारत के सबसे पिछड़े कबीलाई या अविकसित खेतिहर

समाजों को अलग कर दिया जाये ताकि मुख्यधारा पर उसकी जिम्मेदारी और बोझ न आ पड़े? क्या विभाजन स्वीकार करने के पीछे यह दिमाग़ काम कर रहा था कि अल्पसंख्यकों को अलग करने के बाद धर्म विशेष की राजनीति फले फूलेगी? भारत विभाजन को समझने के लिए इन मुद्दों पर विचार करना भी आवश्यक है। इस पक्ष पर भी विचार किया जाना चाहिए कि क्या उभरता हुआ पूंजीपति दकियानूसी सामंती समाज से पल्ला झाड़ लेना चाहता था?

मैं किसी पड़ोसी देश को 'शत्रु देश' नहीं मानता, क्योंकि पड़ोसी के शत्रु होने से जो समीकरण बनते हैं वे शांति, विकास, सहयोग को नष्ट कर देते हैं और मैं अपने देश में शांति-विकास चाहता हूँ। पाकिस्तान एक यथार्थ है। हम उससे चाहे जितना अहसमत क्यों न हो? और जब भी कोई राजनैतिक दल सत्ता में आता है वह पाकिस्तान को 'शत्रु देश' नहीं मानता चाहे वह भाजपा ही क्यों न हो। यह प्रसन्नता की बात है कि भाजपा ने अपने शासन काल में पाकिस्तान से न केवल अच्छे रिश्ते बनाये बल्कि एक दिशा भी देने का प्रयास किया।

भारत के मुसलमान ही नहीं हिंदू, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, आदिवासी और विद्यर्मी सभी हिंदू हैं। मुख्य बात यह है कि हम हिंदू शब्द का क्या अर्थ लगाते हैं। यदि हम सिंध नदी के पार रहने वालों को हिंदू कहते हैं तो निश्चित रूप से हम सभी हिंदू हैं। लेकिन यदि हम विशेष धार्मिक विश्वासों, पूजा पद्धति और आराधना के तरीकों के मानने वालों को हिंदू कहते हैं तो यह सर्वाविदित है कि भारत बहुत से धर्मों का देश है। सवाल यह है कि हिंदू शब्द का प्रयोग करने वाले क्या चाहते हैं? वे हिंदू शब्द से क्या अर्थ ग्रहण करते हैं?

कुत्सित दिमाग, संकुचित दृष्टिकोण तथा ईर्ष्या और वैर रखने वाले प्रेम, सौहार्द, त्याग, बलिदान जैसे भावों से अपरिचित होते हैं। किसी भी समाज की अखंडता का आधार सहिष्णुता और सहयोग की भावना है। विशेष रूप से बहुधर्मी बहु सांस्कृतिक और प्राचीन देशों की जनता यह अच्छी तरह समझती है। पड़ोस में रहने वाले मुल्ला जी अगर दो शादियाँ कर रहे हैं तो मेरी सेहत पर क्या फर्क पड़ रहा है? खिलाना तो उन्हीं को पड़ेगा? मोहल्ले में रहने वाले पंडित जी अगर हिंदू ज्वाइंट फैमिली आयकर कानून के तहत टैक्स देते हैं तो ये उनके और सरकार के बीच की बात है। मैं क्यों अपने आपको दु:ख में डालूँ?

मुस्लिम पर्सनल लॉ के अंतर्गत चार विवाह किए जा सकते हैं जो नहीं होने चाहिए क्योंकि जो कानून सभी नागरिकों पर लागू होता है वहीं मुसलमानों पर भी हों। चार शादियों तथा तलाक में सरलता के कारण मुसलमान औरतों का बहुत शोषण होता है...हम इस शोषण से इतने पीड़ित और दुखी हैं कि हमने मुसलमान औरतों के विकास और सुरक्षा के लिए बहुत-सी संस्थाएं बना दी हैं...क्या आप ऐसी स्थिति से दो-चार हुए हैं? किसी को मुस्लिम महिलाओं के हित में काम करने से कौन रोक सकता है?

पर्चे में कहा गया है परिणामत: मजहबिक (मजहबी) आबादी का असंतुलन चिंता का विषय है अगर इसका यह तात्पर्य है कि मजहबी आबादी में संतुलन होना चाहिए तो यह फैसला कौन करेगा कि कितना? कैसा? क्यों? किस तरह यह संतुलन होना चाहिए? क्या देश की आबादी को देश के धर्मों के आधार पर बराबर-बराबर बाँट देना चाहिए? एक बड़ा रोचक शब्द हमारी भाषा में आया है जिसे कहते हैं 'तुष्टिकरण' यानी 'एपीजमेंट'। भाजपा का यह प्रिय शब्द है। मुसलमानों के संदर्भ में इसका उपयोग बहुतायत से किया जाता है। लेकिन यह नहीं देखा जाता कि अधिकतर राजनीतिज्ञ लगभग सभी काम अपने मतदाताओं के तुष्टिकरण के लिए करते हैं। आडवानी जी ने रथयात्रा किसके तुष्टिकरण के लिए की थी? सोमनाथ मंदिर किसके तुष्टिकरण के लिए बनवाया गया था? शाहबानो केस में कांग्रेस ने मुसलमानों का तुष्टिकरण किया था और राजीव गाँधी ने बावरी मस्ज़िद के ताले खुलवा कर हिन्दुओं का तुष्टिकरण किया था। मतलब यह है कि प्राय: कांग्रेस, भाजपा, समाजवादी पार्टी तथा अन्य दल जाति और धर्म विशेष से संबंध रखने वाले अपने मतदाताओं को नियम और कानून ताक पर रख कर प्रसन्न करने की कोशिश करते रहते हैं। अपने विरोधी दलों द्वारा किए गये इस काम को हम तुष्टिकरण कहते हैं और जब हम स्वयं यह करते हैं तो इसे राष्ट्रीय गरिमा, गौरव, परंपरा और न जाने कितने अच्छे शब्दों में महिमा मंडित कर देते हैं।

यदि इस देश की, यहाँ की जनता की भलाई करनी है, उत्थान करना है तो हिंदू-मुस्लिम की चौहदी से बाहर आना पड़ेगा। हिंसा, घृणा, संदेह, अविश्वास को त्यागना होगा...क्या हम इसके लिए तैयार हैं? ❑❑❑

आतंकवाद के नये-नये चेहरे

एक मित्र वर्धा (महाराष्ट्र) से लौटकर आये और उन्होंने जो बताया उस पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि वे जो बता रहे हैं उसका चित्र भी उनके पास है। मैंने उनसे चित्र लिए तो पता चला मित्र झूठ नहीं बोल रहे थे। मित्रा ने बताया था कि उन्होंने वर्धा (महाराष्ट्र) की आर.वी. चौक नाका पर एक जुलूस देखा। जुलूस में काफी लोग शामिल थे और जुलूस में एक खुले ट्रक पर एक झांकी भी बनाई गयी थी। झांकी में एक सुंदर गाय खड़ी थी। गाय की एक ओर एक आदमी खड़ा जो पहनावे तथा अन्य चिन्हों से हिंदू लगता था। गाय की दूसरी तरफ एक ऐसा आदमी खड़ा था जो वेश-भूषा से पक्का मुसलमान लगता था। इस मुसलमान लगने वाले आदमी के हाथ में एक लम्बा-सा छुरा था जो वह गाय को मारना चाहता था लेकिन हिंदू व्यक्ति उसे रोक रहा था।

चित्र देख कर यह साफ हो जाता है कि झांकी का संदेश है कि मुसलमान गाय के हत्यारे हैं और हिंदू गाय की रक्षा करते हैं। अब सवाल यह उठता है कि भारतीय कौन हैं जो लोग गाय की हत्या करते हैं? इससे पहले यह देखना होगा कि भारत में गाय की हत्या कहाँ-कहाँ होती है?

गाय की हत्या को भारतीय संविधान ने प्रांतों की इच्छा और अनइच्छा पर छोड़ दिया है। कुछ प्रांत जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल, महाराष्ट्र आदि राज्य ऐसे हैं जिन्होंने गऊ हत्या को कानूनी रूप में अवैध करार दे दिया है और कुछ प्रदेश जैसे नागालैंड, केरल, मिज़ोरम आदि ऐसे हैं जहाँ की प्रांतीय सरकारों ने गऊ हत्या को गैऱ-कानूनी नहीं माना है।

अरुणाचल प्रदेश, केरल, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा, लक्षद्वीप में गऊ हत्या पर प्रतिबंध संबंधी कोई कानून नहीं है। जबकि भारत के एकमात्र मुस्लिम बाहुल्य प्रदेश जम्मू कश्मीर में गोहत्या प्रतिबंधित है। महराष्ट्र में गोहत्या प्रतिबंधित है। इसलिए....इस प्रकार की झांकी निकालने का क्या मतलब है कि मुसलमान महाराष्ट्र में गाय की हत्या करते हैं। और हिंदू उसे बचाते हैं? दरअसल देश...के जिन प्रदेशों में गोहत्या होती है वहाँ इस झांकी का कोई अर्थ हो सकता है लेकिन उन सब प्रदेशों में मुसलमान ही गोहत्या करते हैं यह भी विवाद का विषय हो सकता है। नागालैंड, मिज़ोरम, मेघालय में प्राय: मुसलमान नहीं हैं। वहाँ गोहत्या करने वाले स्थानीय लोग हैं। इसलिए झांकी में

मुसलमानों के बजाय नागा, मिज़ोरम आदि लोगों की छवियाँ होनी चाहिए थीं। लेकिन ऐसा नहीं है।

मुसलमान को ही गोहत्या करते दिखाये जाने का स्पष्ट उद्देश्य यह स्थापित करना है कि मुसलमान ही गोहत्या करते हैं। हिंदू समाज की गाय के प्रति आस्था और अपमान करने वाले मुसलमानों के प्रति दर्शकों के मन में यही आता होगा कि मुसलमान हिंदू धर्म और विश्वासों के विरोधी हैं। गउभक्षक हैं, हिंसक हैं। इस कारण उनसे घृणा करनी चाहिए। हिन्दुत्व की रक्षा करनी चाहिए। इन विचारों और भावनाओं की परिणति हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य में होती है। हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे को शत्राु मानने लगते हैं। कभी-कभी भयानक दंगे हो जाते हैं। देशवासियों में फूट पड़ती है।

हिंदू मुसलमानों के बीच शत्रुता बढ़ाने वाले दरअसल देश को अंदर से कमज़ोर करते हैं। उनका कुप्रचार सामाजिक अस्थिरता और विघटन को जन्म देता है। आतंकवादी भी यही काम करते हैं। वे बमों द्वारों विस्फोट करके सैकड़ों लोगों की जान ले लेते हैं। देश के दो समुदायों के बीच घृणा अविश्वास और हिंसा का वातावरण बनाना भी एक प्रकार का आतंकवाद है। इन 'विस्फोटों' का प्रभाव यह पड़ता है कि देशवासियों के मन में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास, घृणा, हिंसा और बदला लेने की भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

हमारा इतिहास साक्षी है कि जब एक देश में रहने वाले लोगों के बीच घृणा और हिंसा बढ़ जाती है तो क्या होता है। क्या आज समाज को घृणा और हिंसा की आग में झोंकने वाले किसी भी तरह देशप्रेमी कहे जा सकते हैं? दरअसल ये पक्के देशद्रोही हैं और समाज के सबसे बड़े शत्रु हैं।

हमें देश की सुरक्षा सीमाओं पर ही नहीं सीमाओं के अंदर भी करने की ज़रूरत है। ये समाज-विरोधी तत्व समाज को बाँट कर अपना राजनीतिक स्वार्थ पूरा करते हैं। ये वही काम करते हैं जो कभी पाकिस्तान के संस्थापक मुहम्मद अली जिन्ना ने किया था। इन्हें शायद यह नहीं मालूम कि देश में घृणा और हिंसा की आग भड़का कर ये अपने राजनीतिक हित तो साध सकते हैं लेकिन इससे देश और देशवासियों को एक ऐसा नुकसान होता है जिसकी भरपाई संभव नहीं होती।

अभी हाल ही मैं शफीकुर्रहमान बर्क बसपा के सांसद सदन से उठ कर चले गये थे क्योंकि वहाँ वंदे मातरम् की धुन बज रही थी। अगर किसी का इस्लाम इतना कमजोर है कि वह वन्दे मातरम् की धुन से खंडित हो जाता है तो उसे पहले अपने धर्म को पक्का करने पर ध्यान देना चाहिए।

श्री बर्क को यह भी मालूम होना चाहिए कि वे किसी इस्लामी देश में नहीं बल्कि संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र में रहते हैं, जहाँ मुसलमान कई मुस्लिम देशों से ज्यादा सुरक्षित और सम्मानित हैं। पाकिस्तान में मुसलमान अपने को जितना असुरक्षित महसूस करते हैं

उतना भारत में नहीं करते। क्योंकि भारत में मुस्लिम समुदाय एक–दूसरे से उस तरह युद्धरत नहीं हैं जैसे पाकिस्तान में है। बर्क साहब अगर वंदे मातरम् की धुन को इस्लाम विरोधी मानते तो क्या वे हिंदू बाहुल्य देश में रहने को गैऱ इस्लामी नहीं मानते, जबकि अब भी दुनिया में इस्लामी देश हैं। जहाँ जाया जा सकता है। बकर्ई साहब का इस्लाम हिंदू वोट लेने और सांसद हो जाने की अनुमति तो देता है देश और संसद की आचार संहिता पर विश्वास करने की अनुमति नहीं देता यह आश्चर्य की बात है। धर्म की आग पर रोटियाँ सेंकने वाले ही समाज में द्वेष, घृणा और अलगाव पैदा कर रहे हैं।

धर्मांधता फैलाकर वोटरों का समर्थन मिल जाता है। धर्मांध मुस्लिम नेताओं को शायद नहीं मालूम कि वे मुसलमानों का जितना अहित कर रहे हैं। उतना कोई और नहीं कर रहा है। लोकतंत्र मुसलमानों और दूसरे धर्मों का सम्मान करता है। इसलिए लोकतंत्र का सम्मान करना और मज़बूत बनाना बहुसंख्यकों की तुलना में अल्पसंख्यकों के लिए ज्यादा ज़रूरी है। श्री बर्क जैसे लोगों को यह भी ध्यान देना चाहिए कि कुछ 'झांकियाँ', 'वक्तव्य' या 'बहिष्कार' भी वही काम करते हैं जो आतंकवादियों के बम विस्फोट करते हैं।

❑❑❑

मुस्लिम राजनीति की दिशा

जामा मस्जिद के इमाम सैय्यद अहमद बुखारी द्वारा आयोजित दस्तारबंदी समारोह को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा गैर-कानूनी घोषित किए जाने तथा शाही इमाम बुखारी पर उचित कार्यवाही होने की संभावना ने कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़े कर दिए हैं, जिनके आलोक में भारतीय अल्पसंख्यक राजनीति पर सार्थक प्रभाव पड़ सकता है। भारतीय राजनीति में ऐसा शायद पहली बार हुआ है जब केंद्र में एक ऐसी पार्टी की सरकार बनी है जिसे मुसलमानों ने वोट नहीं दिए हैं।

इससे पहले कांग्रेस तथा दूसरे दलों के लिए मुस्लिम वोट बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ करते थे। यही कारण था कि कांग्रेस और दूसरे दल धर्मांध मुस्लिम नेताओं की तमाम अनावश्यक और पुरातनपंथी मांगों के आगे सिर झुका दिया करते थे। इसका नतीजा यह निकला कि राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय कट्टरपंथी, धर्मांध और धर्म के नाम पर राजनीति करने वाले मुस्लिम नेताओं की गिरफ्त में आ गया। इसका एक बड़ा प्रतिगामी प्रभाव मुस्लिम समाज पर पड़ा था। इसके कारण सांप्रदायिकता और अलगाव को बढ़ावा मिला, जो धर्मांध मुस्लिम नेताओं के हित में था।

वर्तमान में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी की सरकार उस राजनीतिक दबाव अथवा बाध्यता से मुक्त है जिसके अंतर्गत दूसरे राजनीतिक दलों की सरकारें मुसलमानों का वोट पाने के लिए उनके धर्मांध नेताओं की हर उलटी-सीधी मांग स्वीकार कर लेती थीं।

हालांकि यह सब अपने राजनीतिक हितों को पूरा करने और मुस्लिम मतों को अपने पक्ष में मोड़ने के लिए किया जाता था। आज यदि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार मुसलमानों के हित में धर्मांध मुस्लिम नेताओं पर अंकुश लगाती है तो यह स्वागत योग्य कदम है। आज भारतीय मुसलमानों की एक बड़ी समस्या यह है कि उनके तथाकथित नेता उन्हें आगे बढ़ने से रोकते हैं और जड़ता की ओर धकेलते हैं।

दरअसल कांग्रेस या दूसरे दलों के शासनकाल में मुसलमानों का कोई भला नहीं हुआ है और न ही उनकी स्थिति में कोई खास बदलाव आ पाया। आजादी के बाद लंबे समय में यदि ऐसा कुछ हुआ होता तो सच्चर कमीशन की ऐसी रिपोर्ट न आती जिससे मुसलमानों की वास्तविक स्थिति का पता चलता है।

नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री बनने के बाद संभवत: अल्पसंख्यकों, विशेष रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बारे में कोई बयान नहीं दिया है। उनकी इस चुप्पी के कई अर्थ लगाए जा सकते हैं। एक सकारात्मक अर्थ यह हो सकता है कि वह मुस्लिम समाज के कट्टर धर्मांध नेताओं के दबाव में नहीं आएंगे और इस संबंध में एक नीति बनाएंगे। उन्होंने अब तक नई नीति बनाने के संकेत नहीं दिए हैं।

मोदी मंत्रिमंडल में भाजपा प्रवक्ता मुख्तार अब्बास नकवी को शामिल किया जाना कोई नया संकेत नहीं है। इसी तरह नजमा हेपतुल्ला की उपस्थिति भी मोदी राजनीति की प्रखरता को धूमिल करती है। अल्पसंख्यकों के नाम पर यदि दो लोग चुने गए हैं तो सवाल यह उठता है कि उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिए क्या किया है?

यहाँ लोकप्रियता की बात नहीं की जा रही है, बल्कि उनके योग्दान पर बल दिया जा रहा है। क्या मुख्तार अब्बास नकवी या नजमा हेपतुल्ला ने मुसलमानों के लिए कोई उल्लेखनीय काम किया है। इस क्रम में यदि कुछ आगे बढ़ें तो यह भी पूछा जा सकता है कि क्या देश और भारतीय समाज के लिए उन्होंने कुछ किया है अथवा उनका कोई विशिष्ट योगदान है?

इससे साफ है कि मोदी मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यक मंत्रालय का जिम्मा संभाल रहे मुख्तार अब्बास नकवी और नजमा हेपतुल्ला के माध्यम से नरेंद्र मोदी की अल्पसंख्यक संबंधी नीति को नहीं समझा सकता। वास्तविकता यही है कि आज भी मुस्लिम समाज एक गरीब और अशिक्षित समाज बना हुआ है और वह समय के साथ समाज के शेष वर्गों की तरह प्रगति नहीं कर सका है।

इस समाज का वास्तविक भला वही करेगा जो इसकी अशिक्षा और गरीबी को दूर कर सकेगा और वास्तव में भारतीय मुसलमानों की सभी समस्याओं का समाधान भी यही है।

दुर्भाग्य यही है कि भारत में कोई भी मुस्लिम नेता कभी मुसलमानों की बुनियादी समस्याओं की बात नहीं करता, क्योंकि धर्मांध और भावनाओं से खेलने वाले नेताओं को पता है कि शिक्षित मुस्लिम समाज में उनकी स्थिति शून्य हो जाएगी। अशिक्षा, गरीबी, धर्मांधता और भावुकता उनकी खाद-पानी है।

उन्हें दरअसल धर्म से भी कोई लेना-देना नहीं है। अल्पसंख्यकों के संबंध में नरेंद्र मोदी की चुप्पी के बारे में उनके समर्थक कहते हैं कि उनकी नीतियाँ पूरे देश और पूरी जनता के विकास पर केंद्रित हैं और वह भारतीय जनता को धर्मों, जातियों, समुदायों, क्षेत्राों आदि में बाँट कर नहीं देखते। तर्क के स्तर पर यह बात बहुत प्रभावित करती है, लेकिन सच्चाई यही है कि भारत जैसे विषमताओं से भरे देश में सबके लिए एक-सी कारगर योजनाएँ और नीतियाँ नहीं बनाई जा सकतीं।

उद्योगपतियों और व्यापारियों के विकास के लिए जो योजनाएं बनेगी, उनसे दलित, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों को क्या लाभ होगा? अधिक से अधिक चौकीदारों, सफाई कर्मचारी, सुरक्षाकर्मियों के कुछ पद उन्हें मिल जाएंगे, लेकिन योजनाएं यदि दलितों, आदिवासियों आदि को केंद्र में रखकर बनाई जाएंगी तो इसका सीधा और सबसे बड़ा लाभ लक्षित वर्गों को ही होगा।

यह भी चिंता का विषय है कि भारतीय मुसलमानों के बारे में जब भी कोई बात की जाती है अथवा कही जाती है तब उसका केंद्र उत्तर भारत के मुसलमान होते हैं। हम कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल आदि के मुसलमानों को जाने-अनजाने इस विमर्श में शामिल नहीं करते अथवा उन्हें भूल जाते हैं।

सच्चाई यह है कि दक्षिण भारत के मुसलमानों की उपेक्षा करके भारत के मुसलमानों की सही तस्वीर नहीं बन सकती। दक्षिण के मुस्लिम समुदाय के लोग उत्तर भारत के मुसलमानों से इन अर्थों में भिन्न हैं कि वे अधिक पढ़े-लिखे और जागरूक हैं। वे उद्यमी स्वभाव के हैं और स्थानीय भाषा एवं संस्कृति को आत्मसात किए हुए हैं।

दक्षिण भारत के मुसलमान शिक्षा के क्षेत्रा में बहुत महत्त्वपूर्ण और सराहनीय कार्य कर रहे हैं। कर्नाटक में अल अमीन ट्रस्ट के कई मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेज हैं। आंध्र प्रदेश में चार मेडिकल कॉलेजों के अलावा केरल में भी चार मेडिकल कॉलेज हैं, जो मुस्लिम ट्रस्ट चला रहे हैं। दक्षिण भारत की तुलना में उत्तर भारत के राज्यों में स्थिति बहुत खराब है।

दिल्ली में मुस्लिम संस्थाएं एक मेडिकल कॉलेज ही चला रही हैं। असम में ईआरडीएफ नाम की संस्था है, जो कई संस्थाएं और बड़े इंजीनियरिंग कॉलेज चला रही है। कम्प्यूटर शिक्षा भी इस संस्था की एक विशेषता है। दक्षिण भारत में मुस्लिम समाज के शिक्षित होने के कारण ही उन प्रदेशों में वे समस्याएं नहीं हैं जो उत्तर भारत के मुस्लिम समाज में व्याप्त हैं।

❑❑❑

लोकतंत्र में धर्म और जाति

विसंगतियों, विरोधाभासों और असमानताओं से भरे हमारे देश में आज देश की दिशा और दशा ने जो रुख इख़्तियार कर लिया है वह घोर चिंता का कारण बन गया है। आजादी के बाद शायद देशवासी इतने स्तरों पर इतने अधिक बंटे हुए नहीं थे, जितने आज हैं।

हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता ने जो उग्र रूप धारण कर लिया है वह एक विस्फोटक भविष्य का सूचक है। लगातार होने वाले बम धमाकों के सामने आम देशवासी अपने आपको चाहे जितना असहाय महसूस करता हो लेकिन यह तय है देश के अंदर अविश्वास की आग तेजी से भड़क रही है। बम धमाकों के अपराधी दिखाई नहीं देते लेकिन उनकी पहचान ऐसे समूहों के रूप में तो हो ही जाती है जो एक धर्म विशेष से संबंध रखते हैं।

धर्म विशेष के लोग लाख कहते रहे हैं कि हम धमाकों की निन्दा करते हैं और यह अधार्मिक काम है लेकिन देश में एक माहौल-एक घृणा और प्रतिहिंसा का माहौल तो बनता ही है। धर्म के नाम पर धमाके करने वालों का उद्देश्य भी यही है और वह पूरा हो रहा है। सरकारी तंत्रा की निष्क्रियता और अकर्मंयता आग में घी का काम करती है। जनता हर तरफ से निराश होने के बाद उत्तेजना और उकसावे के चरम क्षणों में ऐसे निर्णय लेती है जो लोकतंत्रा की बुनियादें हिला देते हैं और प्रतिहिंसा को और मज़बूत बनाते हैं। यही पिछले पंद्रह-बीस साल से हो रहा है और हम केवल दर्शक बने देख रहे हैं।

सांप्रदायिकता के बाद हमारे समाज में जातीय तनाव और संघर्ष का माहौल भी उग्र रूप धारण कर चुका है। राजनीतिक, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश की राजनीति तो जातीय समीकरणों में बुरी तरह फंसी दिखाई देती है।

अब सवाल नीतियों पर नहीं पूछे जाते, राजनैतिक दल अपना 'मेनीफेस्टो' नहीं बनाते, अपनी प्राथमिकताएँ और योजनाएँ नहीं घोषित करते; अब बात होती है केवल जातीय समीकरणों पर। समीकरण बनते हैं परंतु जातियों के बीच घृणा और द्वेष की दीवारें ऊँची होती रहती हैं।

आज देश में जातीय हिंसा का जो स्वरूप नज़र आता है। वह पहले नहीं था। अभी हाल में ही गुजर समाज के आंदोलन ने यह सिद्ध कर दिया है कि जातियाँ अपनी माँगें मनवाने और प्रमुख स्थान स्थापित करने के लिए किस तरह कानून तथा प्रशासन से

खिलवाड़ करेंगी और उन पर किसी तरह का कोई शिकंजा नहीं कसा जा सकेगा। बल्कि वोटों की राजनीति उनकी पीठ थपथपाएगी और अपने हित में इस्तेमाल करने की चालें सोचेगी।

जाति आधारित संगठन बड़ी तेजी से सामने आ रहे हैं। प्रदेशों तथा जिलों में जाति विशेष के सम्मेलन और सभाएं यह सिद्ध करते हैं कि आज हमारे समाज की आस्था देश के कानून, व्यवस्था और शासन पर नहीं बल्कि अपनी जाति पर केन्द्रित है। जातिवादी राजनीति के मज़बूत होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि आजादी की आधी शताब्दी बीत जाने के बाद भी लोगों को देश के प्रशासन, कानून व्यवस्था, न्याय व्यवस्था के प्रति आस्था नहीं है।

आज एक आम आदमी यह समझता है कि केवल उसकी जाति ही उसे संरक्षण दे सकती है। जिस समाज में धर्म या जाति सत्ता प्राप्त करने का आधार बनता हो उस समाज में योग्यता, कार्य-कुशलता, कार्यक्षमता आदि का क्या अर्थ बचेगा? यही नहीं अब हमारे समाज में तो यह मान लिया गया है कि योग्यता आदि की बातें किताबी हैं और उनका कोई महत्त्व नहीं है या वे प्रसांगिक नहीं रह गयी हैं।

देश का सबसे ऊँचा न्यायाधीश भी भ्रष्टाचार में लिप्त बताये जाते हैं। निचले-न्यायालयों का क्या हाल होगा इसकी कल्पना की जा सकती है। सरकारी मशीनरी पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी है। पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों का भ्रष्टाचार रोज़मर्रा की बात बन गया है। विकास योजनाएं भ्रष्टाचार की सूली पर चढ़ा दी गयी हैं। छोटे जिलों में तबादले की राजनीति ने प्रशासन को ठप्प करके रख दिया है। केवल वही काम होते हैं जिनसे किसी को व्यक्तिगत लाभ होता है। प्रशासन और राजनीति के गठजोड़ ने विकास को विनाश के कगार तक पहुँचा दिया है। मजे.की बात यह है कि देश की इस स्थिति की जानकारी सबको है और कोई कुछ नहीं कर सकता।

राष्ट्रपति से लेकर प्रधानमंत्री तक जानते हैं कि देशवासियों को न्याय नहीं मिल रहा, भ्रष्टाचार के कारण विकास योजनाएं रुकी पड़ी हैं, सार्वजनिक क्षेत्र के बेस्तर उपक्रम खरबों का घाटा दे रहे हैं लेकिन कोई कुछ नहीं कर सकता। भ्रष्टाचार से निपटने के लिए हमने जो संस्थाएं बनायीं थीं वे स्वयं भ्रष्ट हो गयी हैं। अब सोचने की बात यह है कि एक भ्रष्ट समाज आतंकवाद से कैसे लड़ सकता है? भ्रष्टाचारी पैसा लेकर सब दरवाजे.खोल देता है, उसे इससे क्या मतलब कि कौन आ रहा है, कौन जा रहा है?

कानून और व्यवस्था से लोगों का विश्वास उठ गया है। यही कारण है कि अपराध बेहद तेजी से बढ़ रहे हैं। दूसरी ओर अपराधियों को राजनेताओं से सीधा संरक्षण मिलता है या अपराधी ही राजनेता बन गये हैं। वे पुलिस और प्रशासन के साथ मिलकर सरकार चला रहे हैं। जिसके कारण कानून व्यवस्था पर से लोगों का विश्वास समाप्त हो गया है। इसलिए

लोग विवाद का निपटारा सड़कों पर करने लगे हैं, 'रोड रेज' और सड़क पर होने वाले अपराधों में वृद्धि होती जा रही है।

कानून व्यवस्था के दीवालिएपन के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों और पारिवारिक संबंधों में जो बदलाव आया है वह समाज और राजनीति में आये पतन की प्रतिछाया है। सिद्धांतविहीन और दंड विधान से 'मुक्त' समाज में मानवीय संबंध कैसे होंगे। इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। दहेज के लिए हत्याएँ, बच्चों के साथ बलात्कार और हत्याएँ, वृद्धों की हत्याएँ आदि के पीछे यही मानसिकता काम करती है कि 'सज़ा नहीं होगी' तथा 'सबसे बड़ी चीज़ धन है' जिसे प्राप्त करने के लिए कुछ भी किया जा सकता है।

अब यह लगने लगा है कि दरअसल देश को यथास्थितिवाद की ताकतें चला रही हैं। कुछ शक्तिशाली गुट अपने एजेंडे और कार्यक्रम के अनुसार देश को जिस दिशा में ले जा रहे हैं उस दिशा में देश जा रहा है नहीं तो इसका कोई कारण नहीं है कि आधी शताब्दी के लोकतंत्रा में देश सामाजिक, नैतिक और आर्थिक रूप से आगे बढ़ने के बजाय पीछे जा रहा है।

विसंगतियाँ बढ़ रही हैं जो किसी भी समाज और देश के लिए घातक हैं। एक ओर करोड़पतियों की संख्या बढ़ रही हैं तो दूसरी ओर बेरोज़गारी और भूखमरी बढ़ रही है। किसान आत्म-हत्याएँ कर रहे हैं और विदेशों से होने वाला निवेश खरबों का आंकड़ा पार गया है। एक ओर 'साइबर सिटी' बनाये जा रहे हैं दूसरी ओर आदिवासी उजड़ रहे हैं। देश में बड़े पैमाने पर मजदूरों का पलायन और तस्करी हो रही है। जन-संगठन ठप्प पड़ गये हैं।

इन परिस्थितियों में सबसे ज्यादा खतरनाक यह है कि लोग लोकतंत्र पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं। संसद में जिस तरह सांसदों की खरीद होती दिखाई देती है वह लोकतंत्र पर बड़ा आघात है। लोकतंत्र से विश्वास डिगने के कारण देश में हिंसा बढ़ेगी, धर्मों, जातियों, क्षेत्राों और प्रदेशों के आधार पर लोग बंटेंगे और लोकतंत्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। ऐसे हालात में हम अपने नेताओं की ओर देखते हैं।

आशा करते हैं कि वे हमें इस गंभीर संकट से उबार लेंगे। लेकिन हमारे नेता हैं कौन? क्या वे हमारे नेता हैं जो धर्म और जाति के नाम पर पहले से ही देश को दरका चुके हैं? या देश के नेता वे हैं जो यथा स्थितिवाद के पोषक हैं? कौन है देश का नेता? क्या वे हैं जो छोटी-छोटी क्षेत्रीय पार्टियाँ बना कर अपनी गद्दियाँ बचाने में लगे हैं?

दरअसल एक बड़ा संकट यह भी है कि आज हमारे पास 'विज़नरी' नेतृत्व का नितांत अभाव है। यही नहीं हमारा आज का नेतृत्व देश को वर्तमान संकट से निकाल पाने का रास्ता नहीं खोज पाया है और न उसके पास भविष्य का कोई 'रोड मैप' है। शायद देशों के इतिहास में यह समय भी आता है, पर सदा नहीं रहता।

❑❑❑

हिजाब : पर्दे के पीछे क्या है?

ब्रिटेन के पूर्व विदेश मंत्री जैक स्ट्रा ने यह कह कर कि मुसलमान महिलाएं अपना बुर्का उतार दें, कोई नयी बात नहीं; पर एक ज़रूरी बात ज़रूर कही है। मुस्लिम समाज पिछले सौ साल से पर्दे की धार्मिकता, सार्थकता, नैतिकता और आवश्यकता पर तरह-तरह से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता रहा है। सबसे पहला और बड़ा सवाल यह है कि क्या पर्दा इस्लाम धर्म में आवश्यक माना गया है? क्या पर्दा धर्म का एक आवश्यक हिस्सा है? यदि हाँ तो कैसा पर्दा धर्म का अनिवार्य हिस्सा है और न उसकी कोई परिभाषा दी गयी है। इस्लाम धर्म के विद्वान यह कहते हैं कि महिलाओं की निर्लज्जता को इस्लाम बुरा समझता है तथा शालीन ढंग से कपड़े पहनने की सलाह देता है। इसलिए पर्दा करने या न करने से इस्लाम धर्म खत़रे में पड़ जायेगा; ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो सारे संसार में फैले मुसलमान देशों की महिलाएं एक तरह से एक प्रकार का पर्दा कर रही होतीं। लेकिन ऐसा नहीं है। मुसलमान औरतों को उनके मर्द अलग-अलग देशों में अलग-अलग तरीके से पर्दा कराते हैं या उसकी परम्पराएं डाल रखी हैं।

भारत में मुसलमान ऐसा बुर्का पहनती हैं जिसमें सिर से पैर तक औरत ढक जाती है और आँखों के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। यह पर्दा या बुर्का भारत के भारत ईरान या अरब देशों में नहीं चलता। वहाँ सिर पर कपड़ा बाँधा जाता है और ऐसे कपड़े पहने जाते हैं कि शरीर ढका रहे। लेकिन चेहरा पूरी तरह खुला रहता है। भारतीय मुसलमान इस पर्दे को पर्दे नहीं समझते जिसमें चेहरा पूरी तरह नज़र आता हो।

पाकिस्तान और भारत में ही नहीं संसार के दूसरे देशों में भी मुसलमान समाज तेज़ी से पर्दा छोड़ रहा है। अफसोस है कि ऐसा कोई अध्ययन या आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं लेकिन पिछले पचास साल में कम-से-कम बड़े शहरों में मुस्लिम महिलाओं ने बुर्के से पीछा छुड़ा लिया है पर वे फिर भी मुसलमान है क्योंकि कुरान की हिदायत के अनुसार निर्लज्जता नहीं करतीं; बांग्लादेश की मुसलमान स्त्री साड़ी को इस तरह पहनती है कि निर्लज्जता नहीं हो पाती। पंजाब की औरत सलवार- कुर्ता इस प्रकार पहनती हैं और ईरान की औरत जीन्स, कोट और स्कार्फ बाँधती हैं कि कुरान के हुक्म की पाबंदी हो जाती है। इसलिए यह मानना कि पर्दे का कोई एक ही स्वरूप है और उसे मानने या न मानने से इस्लाम खतरे में पड़ जायेगा, ग़लत है।

योरोप में मुस्लिम महिलाएँ या कहना चाहिए कुछ मुस्लिम महिलाएं 'हिजाब' करती हैं। 'हिजाब' का शब्दिक अर्थ शर्म या लज्जा है। व्यवहार में इसकी परिणति इस तरह होती है कि एक बड़ा और चौकोर रूमाल सिर पर इस तरह बाँधा जाता है कि सिर ढक जाये तथा उसका एक हिस्सा छाती पर पड़ा रहे। यह कपड़ा प्राय: काले रंग का होता है। निश्चित रूप से हिजाब बाँधें लड़कियाँ या औरतें योरोपीय परिवेश में सवालिया निशान लगती हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि योरोप में जन्मी लिखी-पढ़ी लड़कियाँ हिजाब क्यों करती हैं? शायद ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उनके माता-पिता उन पर ज़ोर डालते हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे हिजाब को धर्म का अभिन्न अंश मानती हैं। क्योंकि कोई भी पढ़ी-लिखी लड़की अच्छी तरह जानती है कि पर्दा इस्लाम के तीन बुनियादी सिद्धांतों में नहीं आता। यह भी कुछ विचित्रा और रोचक तथ्य है कि 'हिजाब' को महिलाओं की पुरानी पीढ़ी से अधिक नयी पीढ़ी अपना रही है जो अधिक आधुनिक, पढ़ी-लिखी और 'योरोपीय' है।

इस समस्या को समझने के लिए पिछले तीस-चालीस साल में आये योरोप तथा मुस्लिम देशों के संबंधों तथा उससे जुड़ी राजनीति को समझना पड़ेगा। जिसने मुसलमान समाज पर अपना गहरा प्रभाव डाला है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिम तथा अमेरीका द्वारा अरब क्षेत्रा में इज़राइल की स्थापना तथा इज़राइल द्वारा क्षेत्रा पर प्रभुत्व जमा लेने में पश्चिम का योगदान, अरबों का शोषण और विस्थापन एक ऐसा मुद्दा रहा है जिसने अंतर्राष्ट्रीय मुस्लिम समाज को बहुत गहराई से आहत किया है। ईरान की लोकतांत्रिाक सरकार का सी.आई.ए. द्वारा तख़्ता पलटा जाना और राष्ट्रीय नेता की हत्या, सउदी अरब पर अमेरिका का आधिपत्य, तेल की सम्पदा पर अमेरिकी कम्पनियों का कैंज़ा, अफगानिस्तान में कट्टरपंथी मुस्लिम नेताओं को पश्चिम का समर्थन और बाद में विश्वासघात जैसी स्थिति पैदा कर देना, इराकश पर अमेरिकी और योरोपीय आक्रमण, ईरान के अणु ऊर्जा कार्यक्रम पर पश्चिम का नकारात्मक रूख, सोवियत यूनियन के पतन के बाद एक ध्रुवीय राजनीति में अमेरीका का प्रभुत्व और मध्य एशिया के देशों में सेनाएं उतार देना तथा अकृे बना देना आदि राजनैतिक घटनाओं से योरोप के मुसलमान की मानसिकता को जोड़कर देखने की आवश्यकता है। पश्चिम ने मुसलमानों के लिए राजनैतिक विरोध के रास्ते बंद कर दिये हैं और जब राजनैतिक विरोध के रास्ते बंद हो जाते हैं तो सांस्कृतिक प्रतिरोध का रास्ता ही बचता है। बड़ी सीमा तक सांस्कृतिक प्रतिरोध आत्मघाती होता है, इसमें भी कोई संदेह नहीं। योरोप में 'हिजाब' क्या सांस्कृतिक प्रतिरोध जैसा नहीं है?

जैक स्ट्रा जैसे लोग योरोपीय मुसलमानों के व्यवहार को एक स्वस्थ समाज में स्वस्थ नागरिक के व्यवहार जैसा चाहते हैं लेकिन समस्या तो उससे अधिक गहरी है और सूचना क्रांति के युग में यह और भावनात्मक बन जाती है। पश्चिमी देश इस संबंध में विचार कर सकते हैं कि एक स्तर पर धार्मिक कट्टरता से लाभ उठा कर दूसरे स्तर पर धार्मिक कट्टरता

का विरोध नहीं किया जा सकता। जब पश्चिम को सोवियत यूनियन के विरुद्ध धर्मांध मुसलमानों का समर्थन चाहिए था तो बड़े स्तर पर योरोप और अमेरिका में कट्टर धर्मांध मुस्लिम नेताओं को वीज़ा तथा 'रेज़ीडेन्सी परमिट' दिये गये थे। बीस साल पहले बोया गया बबूल का पेड़ आम नहीं दे सकता।

इस्लाम का इतिहास साक्षी है कि समय-समय पर ऐसी प्रबुद्ध मुस्लिम महिलाएं सामने आती रही हैं जिन्होंने पुरुषों के सामान ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। न केवल हम व्यापार करने वाली मुस्लिम महिलाओं को देखते हैं बल्कि ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों में भी हमें मुस्लिम महिलाएं दिखायी पड़ती हैं। निश्चित रूप से ये महिलाएं अपने कारोबार और काम के सिलसिले में पुरुषों से मिलती होंगी और इनका हिजाब या पर्दा उनके काम में बाधा नहीं बनता होगा। इस कारण हिजाब के समर्थकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि हिजाब महिलाओं के विकास में बाधा न बने। भारत में मुस्लिम महिलाओं के लिए पर्दे का जो प्रावधान किया गया है वह निश्चित रूप से उनके विकास और काम में ही नहीं बल्कि स्वस्थ विकास में भी बाधा बनता है। कहा जाता है कि भारत के सामंतवाद और जातिवाद के प्रभाव के कारण पर्दे का एक ऐसा स्वरूप बन गया है जिसे इस्लामी मानदण्डों के आधार पर भी उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस संबंध में कई मुस्लिम विचारकों ने अपने मत व्यक्त किये हैं।

पर्दे या हिजाब की समस्या पर बहुत सहानुभूतिपूर्वक ढंग से विचार करने की आवश्यकता है। ऐसा नहीं लगना चाहिए कि पर्दा प्रथा के बारे में कुछ ऐसा कहा जा रहा है वह इस्लाम के सिद्धांतों के विरूद्ध है।

कहानियाँ

गुरुगुरु–चेला संवाद

एक

चेला : गुरु जी, क्या हमारे देश के मुसलमान विदेशी हैं?

गुरु : हां, शिष्य, वे विदेशी हैं।

चेला : वे कहां से आए हैं?

गुरु :वे ईरान, तूरान और अरब से आए हैं?

चेला : लेकिन अब वे कहां के नागरिक हैं?

गुरु : भारत के।

चेला : वे कहां की भाषाएं बोलते हैं?

गुरु : भारत की भाषाएं बोलते हैं।

चेला : उनके रहन–सहन तथा सोच–विचार का तरीका किस देश के लोगों जैसा है?

गुरु : भारत के लोगों जैसा है।

चेला : तब वे विदेशी कैसे हुए गुरुजी?

गुरु : इसलिए हुए कि उनका धर्म विदेशी है।

चेला : बौद्ध धर्म कहां का है गुरुजी?

गुरु : भारतीय है शिष्य

चेला : तो क्या चीनी? जापानी, थाई और बर्मी बौद्धों को भारत चले आना चाहिए?

गुरु : नहीं...नहीं शिष्य! चीनी, जपानी और थाई यहां आकर क्या करेंगे?

चेला : तो भारतीय मुसलमान ईरान, तूरान और अरब जाकर क्या करेंगे?

दो

गुरु : चेला, हिन्दू–मुसलमान एक साथ नहीं रह सकते।

चेला : क्यों गुरुदेव ?

गुरु : दोनों में बड़ा अंतर है

चेला : क्या अंतर है?

गुरु : उनकी भाषा अलग है...हमारी अलग है।

चेला : क्या हिंदी, कश्मीरी, सिंधी, गुजराती, मराठी, मलयालम, तमिल, तेलुगु, उड़िया, बंगाली आदि भाषाएं मुसलमान नहीं बोलते...वे सिर्फ उर्दू बोलते हैं?

गुरु : नहीं...नहीं, भाषा का अंतर नहीं है...धर्म का अंतर है।

चेला : मतलब दो अलग-अलग धर्मो के मानने वाले एक देश में नहीं रह सकते?

गुरु : हां...भारतवर्ष केवल हिंदुओं का देश है।

चेला : तब तो सिखों, ईसाइयों, जैनियों, बौद्धों, पारसियों, यहूदियों को इस देश से निकाल देना चाहिए।

गुरु : हां, निकाल देना चाहिए।

चेला : तब इस देश में कौन बचेगा?

गुरु : केवल हिंदू बचेंगे...और प्रेम से रहते हैं।

चेला : उसी तरह जैसे पाकिस्तान में सिर्फ मुसलमान बचे हैं और प्रेम से रहते हैं।

तीन

गुरु : मुसलमानों से घृणा किया करो।

चेला : क्यों गुरुदेव ?

गुरु : क्योंकि वे गंदे, अनपढ़ और अत्याचारी होते हैं

चेला : समझ गया गुरुदेव, आपका मतलब है, गंदे, अनपढ़ और अत्याचारी लोगों से घृणा करनी चाहिए।

गुरु : नहीं...नहीं। ये नहीं...दरअसल मुसलमानों से इसलिए घृणा करनी चाहिए क्योंकि वे बड़े कट्टर धार्मिक होते हैं।

चेला : मैं कट्टर धार्मिक लोगों से घृणा करता हूं गुरुदेव?

गुरु : नहीं...नहीं। तुम समझे नहीं...वास्तव में मुसलमान से घृणा इसलिए करनी चाहिए कि उन्होंने हमारे ऊपर शासन किया था।

चेला : तब तो ईसाईयों से भी घृणा करनी चाहिए।

गुरु :नहीं...नहीं, शिष्य...मुसलमानों से घृणा करने का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने देश का बंटवारा कराया था।

चेला : तो देश का बंटवारा करने वालों से घृणा करनी चाहिए?

गुरु : हां...बिलकुल। देश को बांटने वालों से घृणा करनी चाहिए।

चेला : और देशवासियों को बांटने वालों से क्या करना चाहिए,

चार

चेला : गुरुजी, सांप्रदायिक दंगों में कौन लोग मरते हैं?

गुरु : सांप्रदायिक दंगों में बड़े-बड़े पंडित, मौलवी, बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और बड़े अधिकारी मरते हैं।

चेला : और कौन लोग कभी नहीं मरते?

गुरु : मामूली लोग, कारीगर, दस्तकार, रिक्शे वाले, झल्ली वाले, नौकरी-पेशा आदि नहीं मरते।

चेला : तो गुरुजी, दंगे न रुकने का कारण क्या है?

गुरु : साफ है शिष्य…आम लोग दंगे रुकवाने में कोई रुचि नहीं लेते।

चेला : और बड़े-बड़े लोग?

गुरु : बड़े-बड़े लोग तो बेचारे दंगे रुकवाने की कोशिशें करते हैं…पंडित-मौलवी दंगे रुकवाने के लिए धर्म की दुहाई देते हैं। राजनीतिक दलों के नेता दंगे रोकने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं…सेठ-साहूकार दंगे रुकवाने के लिए चंदे देते हैं…सरकारी अधिकारी दंगे रोकने की भरसक कोशिश करते हैं

चेला : इसके बाद भी दंगे क्यों नहीं रुकते?

गुरु : यही तो रहस्य है बेटा…इसे समझ जाओगे…और किसी दंगे में मार दिए जाओगे।

पांच

चेला : गुरुजी, सांप्रदायिक दंगों में हत्याएं आदि करने वालों को कानून कोई सजा क्यों नहीं देता?

गुरु: यह हमारे कानून की महानता है शिष्य…

चेला : कैसे गुरुजी?

गुरु : हमारी अदालतें दंगों से हत्याएं करने वालों की भावनाओं को समझती हैं।

चेला : क्या समझती हैं।?

गुरु : शिष्य, सांम्प्रदायिक दंगे में जो मरता है वह सीधे स्वर्ग जाता है न?

चेला : हां, जाता है।

गुरु : तो उसे स्वर्ग भेजने का उपकार कौन करता है?

चेला : हत्या करने वाला।

गुरु : बिलकुल ठीक...तो शिष्य, हमारा कानून इतना बेशर्म तो नहीं है कि उपकार करने वालों को फांसी पर चढ़ा दें।

छः

चेला : गुरुजी, दंगे कैसे रोके जा सकते हैं?

गुरु : शिष्य, इस सवाल का जबाब तो पूरे देश के पास नहीं है। राष्ट्रपति के पास नहीं है, प्रधानमंत्री के पास नहीं है। पूरे मंत्रिमंडल के पास नहीं है। बुद्धिजीवियों के पास नहीं है।

चेला : गुरुजी...मनुष्य चांद पर पहुंच गया है, प्रकृति पर विजय पा ली है...असंभव संभव हो गया है...वैज्ञानिकों को यह खोजने का काम क्यों नहीं सौपा गया कि दंगे कैसे रोके जा सकते हैं?

गुरु : शिष्य, वैज्ञानिकों को इस काम पर लगाया गया था...पर उनका कहना है कि यह धार्मिक मामला है।

चेला : फिर धार्मिक लोगों को इस काम पर लगाया गया?

गुरु : हां, धार्मिक लोग कहते हैं यह सामाजिक मामला है।

चेला : समाजशास्त्री क्या कहते हैं?

गुरु : उन्होंने कहा कि राजनीतिक मामला है।

चेला : फिर राजनैतिज्ञों ने क्या कहा?

गुरु : उन्होंने कहा कि यह कोई मामला ही नहीं है।

सात

चेला : सांप्रदायिक दंगों की जिम्मेदारी क्या प्रधानमंत्री पर आती है गुरु जी?

गुरु : नहीं।

चेला : मुख्यमंत्री पर आती है?

गुरु : नहीं।

चेला : गृहमंत्री पर आती है?

गुरु : नहीं।

चेला : सांसद या विधायक पर आती है

गुरु : नहीं।

चेला : जिलाधिकारियों, पुलिस अधिकारियों पर आती है?

गुरु : नहीं।

चेला : फिर सांप्रदायिक दंगों की जिम्मेदारी किस पर आती है?

गुरु : जनता पर।

चेला : मतलब...?

गुरु : मतलब हम पर...

चेला : मतलब?

गुरु : मतलब किसी पर नहीं।

❑❑❑

सारी तालीमात

हर तीन–चार साल के बाद शहर में फसाद हो जाता है, ढाटे बांधे हुए। 'हरहर महादेव' का नारा लगाते हिन्दुओं की गिरोह मुसलमानों के मौहल्लों पर हमला करते हैं और मुसलमान, हिन्दुओं पर जिहाद बोल देते हैं। आग लगायी जाती है। जो होली–ईद मिलन, एकता के सिद्धान्तों और सांप्रदायिकता विरोधी कमेटियों की कागजी दीवार को भस्म कद देती है। दो–चार दिन तक गिरोह सक्रिय रहते हैं। तेजाब, चाकू, लाठियां, बल्लभ और एक–आध बंदूक, देसी कट्टे लिए शत्रु की खोज में केवल एक–आध आदमी, औरत या दुकान ही नजर पड़ती है जिसका तत्काल फैसला कर दिया जाता है। कासिमपुरे में अफवाहों का बाजार गर्म हो जाता है। 'आज रात दो हजार हिन्दु हमला करने वाले हैं।' मौहल्ले के लड़के अपनी अपनी छतों पर ईंटें जमा करने लगते हैं। 'आज पुलिस ने मास्टर रहमत अली का घर जला दिया' 'झूठ? क्या बकते हो? गफूर ने अपनी आंखों से देखा है।' 'यही तो गड़बड़ है मियां, पुलिस भी उनका साथ देती है, नहीं तो इन धोती बांधनेवालों को तो एक घंटे में ठीक कर दें। लेकिन सरकार से कौन लड़ सकता है?' कासिमपुरा, नवाबगंज रहमताबाद में मुसलमानों की सौ फीसदी आबादी है। लेकिन पूरे शहर में फिर भी हिन्दू ज्यादा हैं। अगर हमला बोल दिया तो क्या होगा? मौत का डर मौहल्ले की रग–रग में चमक जाता है।

सड़के ऊसर की तरह सुनसान हो जाती हैं। पुलिस के जूतों और सीटियों की आवाजों के सिवा नहीं सुनाई देता, कभी–कभी पुलिस जीप की आवाज आती है और सन्नाटा छा जाता है, 'बड़े पुल के पास मुसलमान की लाश मिली है।' 'आज पुलिस की गश्त नहीं हो रही है, जरूर हमला होगा।' पूरा मोहल्ला एक ठंडे भयानक तनाव और डर में डूब जाता है। चार–पांच दिन के बाद छुटपुट चाकू की वारदातें शुरू हो जाती हैं। पतली तंग गली के कोने पर तीन–चार आदमी मिलकर राशन की तलाश में निकले किसी झल्लीवाले या रिक्शेवाले को चाकू मार देते हैं। घुटी–घुटी सी भयानक चीख, भागते हुए पैरों की आवाजें, खिड़कियां खुलने का शोर और फिर 'अल्लाह अकबर' के नारे सुनायी पड़ते हैं।

इस दंगे के बाद हिन्दुओं के मोहल्ले के आस–पास रहने वाले मुसलमान किसी मुसलमानी मौहल्ले में आ जाते हैं और मुसलमानों की बस्ती के पास रहने वाले हिन्दू रस्तोगीगंज या रघुबीरपुरा चले जाते हैं।

मुसलमानी मौहल्लों में दाढ़ियों की तादाद बढ़ जाती हैं। मस्जिद में नमाजी अधिक

आने लगते हैं। लोग देर तक गिड़-गिड़ाकर दुआएं मांगने लगते हैं। गुंडा पार्टी लूट के माल को इधर-उधर करने में लग जाती है। हथियार जमा करने का चंदा वसूल करती हैं। पता नहीं अगले फसाद से सिर्फ गोलियां ही चले। शहर में कितने हिंदुओं के पास बंदूकें हैं और कितने मुसलमानों के पास? दस और एक का भी तो औसत नहीं पड़ता, कारतूस जमा किए जाते हैं। लेकिन पुलिस का ख्याल आते ही सबकी हवा बिगड़ जाती है। जुग्गन, रहमत के होटल के सामने बहती नाली में बलगम थूककर कहता है, ''यही तो गड़बड़ है जिगर। पुलिस अगर किसी तरफ से...''

''अब साले, हाजीजी से चंदा क्यों नहीं लेते? कारखाना चलाते हैं हराम में ?''

हाजीजी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहते हैं, ''इस बार तो माशा-अल्लाह तुम लोगों ने भी कुछ किया।''

''हाजीजी, आप हाथ रख दें तो देखिए क्या नहीं कर दिखाते।''हाजीजी एक हजार रुपया चंदा देते हैं और जुग्गन की पार्टी चली जाती है। वैसे हाजी जी को एक हजार चंदा देने की कोई जरुरत नहीं थी, क्योंकि उनका कारखाना कासिमपुरे के बीचोंबीच है। कारीगर भी सौ फीसदी मुसलमान हैं। हाजी जी हिंदुओं को रखते ही नहीं। कहते हैं, कौम की खिदमत करने का मौका खुदा ने दिया है तो उसे क्यों छोडूं? मुसलमान कारीगर भी हाजी जी के कारखाने में काम करना चाहते हैं। जान प्यारी है, पैसा नहीं।

शहर तीन हिस्सों में बंटा हुआ है। स्टेशन से उत्तर की तरफ चले जाइए तो सिविल लाइन्स का इलाका है। चौड़ी सड़क पर दूर तक कोठियां बनी हुई हैं। डी.एम. की कोठी से सड़क शुरू होती है और इंजीनियर साहब की कोठी के पास मुड़ जाती है। यहां पर हाजी करीम और वीरेन्द्र बाबू की कोठियां एक-दूसरे से मिली हुई बनी हैं। रफीक मंजिल, जहां कभी मोहम्मद अली जिन्ना ठहरा करते थे, उनके बराबर में जनसंघ के अध्यक्ष पंडित सोमदत्त गौड़ का बंगला है। नवाब अब्दुल मसीद खां, जो अंग्रेजी राज में बड़े ऊंचे ओहदे पर काम कर चुके थे, की कोठी के बिलकुल सामने जिला कांग्रेस के नेता जी का विशाल 'स्वराज निवास' है।

स्टेशन से दक्खिन की तरफ जाइए तो चमकता हुआ साफ बाजार मिलेगा।

सामान भरा हुआ है कि अगर हर एक घर में एक-एक चीज पहुंचा दी जाए तब भी किसी चीज की कमी न पड़े। इस सड़क पर रिक्शों, मोटरों, साइकिलों की भीड़ में चलना मुश्किल हो जाता है। इसी सड़क पर शहर के बड़े रेस्तरां भी हैं और सिनेमा घर भी। शराब की दूकानें भी और जौहरियों की गद्दियां भी। यहां रात में चमचमाती हुई रॉडों की रोशनी होती हैं और कूल्हे से कूल्हा छिलता है। इस सड़क के दोनों तरफ गलियां हैं। कुछ हद तक साफ सुथरी और पक्की गलियों में पक्के मकान बने हुए हैं जिनमें हिन्दु रहते हैं। इन मोहल्लों में मकान लेने कोई मुसलमान नहीं जाता। जैसे उनको मालूम है कि शहर का यह हिस्सा दूसरी

तरह के लोगों के लिए बना है और वे दूसरी तरफ के लोग हैं। दतरों के बाबू, स्कूल के मास्टर, छोटे दुकानदार, अलग-अलग नौकरियां और धधों में लगे हुए वे सब हिन्दू हैं। इसी सड़क पर और बढ़ते चले जाइए तो बड़े चौराहे के बाद चमकीली दुकानें खत्म हो जाएंगी। कुछ फल बेचने वालों की छोटी-छोटी और पुरानी दुकानें हैं जिनमें बैठे दुकानदार सूरत ही से मुसलमान लगते हैं। जवानों के चेहरों पर काली खशखशी दाढ़ी और आंखों में सख्ती दिखाई पड़ती है। बूढ़ों के चेहरों पर सफेद लंबी दाढ़िया माथे पर गट्टे का निशान। वे अपनी दुकानों पर इस तरह बैठते हैं, जैसे घर में आराम से बैठे हों। बैठे-बैठे 'नहीं' कह देने में इनका कोई जवाब नहीं है। ग्राहकों को देखकर न हंसते हैं और न मुस्कराते हैं। शायद ग्राहकों का आना इनको अच्छा नहीं लगता। न उनकी पूरी बात सुनने की कोशिश करते हैं और न अपनी पूरी बात उनको बताते हैं।

बांद वालों की दुकानों के बाद से बाजार की चहल-पहल अपना रंग-ढंग बदल लेती हैं। अब बायीं तरफ एक लाइन से बिस्कुट बनाने वालों की दुकानें हैं जहां दुकानदार तहमद बांधे, बनियान पहने बिस्कुटों के लिए मैदा फेंटते दिखाई पड़ते हैं। आठ-नौ साल के बच्चे बड़े-बड़े बर्तनों को धोते, गंदी-गंदी गालियां बकते रहते हैं। हर दुकान पर एक-आध आदमी बेकार बैठा दिखाई पड़ता है। बिस्कुट बनाने वाली की गंदी दुकानों के सामने लाइन से दूर तक खाने के होटल हैं कभी-कभी यह सोचकर आश्चर्य हो सकता है कि इस बस्ती में रहने वाले लोगों ने खाने के अतिरिक्त और किसी चीज की दुकान खोलने की बात क्यों नहीं सोची? सिर्फ चाय के होटल, बिस्कुट की दुकानें,खाने की होटल कवाब की दुकानें ही दूर तक दिखाई देती हैं। पहला यासीन टी स्टाल है। अदंर सफेद पत्थर की मेजों पर लगातार मक्खियां भिनकती रहती है। उर्दू के-एक दो अखबार, जिन पर काफी चाय गिर चुकी है, बुलंद आवाज में पढ़े जाती हैं। यासीन दुकान के सामने वाले दर में भट्‌टी के सामने खड़ा चाय बनाता रहता है या ऊपर लगे रेडियों के कान उमेठा करता है, जिस पर जालीदार गिलाफ चढ़ा हुआ है। भट्‌टी के दाहिनी तरफ शीशे के गंदे मर्तबानों में बिस्कुट भरे रहते हैं जिनसे यासनी बिलकुल तटस्थ दिखाई देता है। इन बिस्कुटों को जब कोई ग्राहक मांगता है तो यासीन बड़ी बेजारी से एक बिस्कुट इस तरह मेज पर रख देता ह, जैसी गाली दे रहा हो। ये पुराने बिस्कुट सिर्फ औंटी हुई चाय में डुबोकर ही खाये जा सकते हैं। यासीन टी स्टाल के बाद एक कवाब वाले की छोटी-सी दुकान है जो भैंस के कीमे की सींक लगाता है। इस दुकान के सामने खड़े होने पर आग की चिंगारियों के साथ भुने गोश्त की खुशबू नाक में घुस जाती है। साथ ही लगा हुआ खाने का एक और होटल है जिसके नाम का बड़ा बोर्ड दसियों बरसातों को न सह पाने की वजह से जंग लगा टीन बन चुका है। एक बहुत बड़े थाल में रखी बिरयानी के पीछे मोटा अब्दुल गफूर बैठा गोश्त निकाला करता है। उसके चारों तरफ बड़ी पतीलियों में कीमा, कलेजी, भेजा, छोटे का और बड़े का गोश्त सजा रहता है। खजहे कुत्ते

होटल के अंदर आकर मेज के नीचे से हड्डियां उठा ले जाते हैं। होटल में काम करने वाले लड़के गंदे और चिक्कट कपड़े पहने ग्राहकों के सामने बड़े गोश्त की रकाबियां और रोटियां पटक देते हैं। हड्डी को चबाकर नीचे फर्श पर फेंक देने का या खाना खाने की कुर्सी पर बैठे-ही-बैठे गिलास के अंदर हाथ डालकर हाथ धो लेने पर किसी को एतराज नहीं होता। दीवारों पर इस्लामी कलैंडर या मक्का-मदीने की तस्वीरें या कुरआन की आयतें आने-जाने वालों की देखती हैं। होटल के बैरे, जिन्हें किसी भी तरह आप बैरा नहीं कह सकते, से अगर खाने के बारे में पूछें तो वह एक ही सांस में दस खानों के नाम गिनवाकर आपकी तरफ इस तरह देखेगा जैसे एहसान किया हो। इसके बाद बिस्मिल्ला होटल है जो और भी गंदा और सस्ता है।

इन दुकानों और होटलों से ये तो पता चल जाता है कि इन मौहल्ले में रहने वालों को खाने और विशेष रूप से गोश्त खाने में बड़ी दिलचस्पी हैं। गंदे और फटे चीथड़े लगाए, खांसी से बेतरह पेरशान, छोटे-छोटे लड़के हाथ में कई जगह से चिपटा अल्मुनियम का प्याला लिए आते हैं, ''कीमा दे दो,कीमा, एक प्लेट।'' और कीमा लेकर गली में भाग जाते हैं। इन गलियों में इतनी जगह भी नहीं है कि तीन-चार आदमी एक साथ चल सकें। दोनों तरफ की ऊंची दीवारों के कारण गली में हल्का सा अंधेरा और सीलन रहती है। कई ईंट से बनी दीवारों पर मर्दानगी बढ़ाने वाली दवाओं के इश्तिहार या उर्दू में लगे पोस्टर दिखाई पड़ते हैं। जो किसी 'मीलाद शरीफ' या 'उर्दू के कत्ल और 'क्रीम पर मुसीबत' की इत्तिला देते हैं। आमतौर पर घरों के नाबदारन गली में खुलते हैं जिसके ऊपर लटका टीन गलकर गायब हो चुका होता है। ऊपर कोठी से रेडियो की तेज आवाज या चीख-पुकार सुनाई देती है। टीन के गले पाइपों से ऊपर का गंदा पानी गली में गिरता है तो उसके छींटे पूरी गली में फैल जाते हैं। गली में खुलनेवाले पुराने और बरसाती पानी में गले दरवाजों पर टाट का चिथड़ा पर्दा किसी भी वजह से कभी हट जाता है तो धुआंया हुआ दालान दिखाई पड़ जाता है। सुबह और शाम कोयले की अंगीठियां जब गली में आ जाती है तो पूरी गली नीचे धुएं से घिर जाती है। किसी पर्दे के पीछे कोई पीले या पतले चेहरे वाली लड़की झांकती है। और दो नंगे बच्चे, जिनके पेट फूले होते हैं, अंदर घुस जाते हैं।

यह शहर का तीसरा हिस्सा है जहां सौ फीसदी मुसलमान रहते हैं। इन मौहल्लों में शायद ही कभी कोई हिन्दू आता हो। आने की जरूरत ही क्या है? और मकान लेने या रहने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता। हां, इन मौहल्लों के पीछे कुछ चमार, पासी या कुछ इसी तरह के लोग झोपड़ियों में रहते हैं। ये लोग भी इसी तरह की जलील और भुखमरी वाली जिंदगी जीते हैं, जैसी कि मोहल्ले के दूसरे लोग।

इस मौहल्ले से म्युनिसिपैलिटी में मुसलमान ही इलेक्शन जीतते हैं। हिन्दू खड़े ही नहीं होते। स्कूलों के मास्टर मुसलमान हैं। डाक्टर मुसलमान हैं, दुकानदार मुसलमान हैं,

छोटे-मोटे दूसरे काम करने वाले मुसलमान हैं।

इस नीम के पासवाली गली के अंदर चले जाइए तो आगे चलकर एक बड़ा सा पुराना मकान दिखाई पडेग़ा, जिसके दरवाजे पर छोटी-सी तख्ती में 'हाजी करीम एंड को' लिखा दिखाई देगा। यही हाजीजी का कारखाना है।

'हाजी अब्दुल करीम एंड को' के ताले ही हिन्दुस्तान के मशहूर ताले हैं। आजकल तो कोई भी ऐरा-गैरा नत्थु-खैरा ताला बनाने का काम शुरू कर देता है, नहीं तो सन् तीस में सिर्फ हाजी का एक कारखाना था।

एक हजार रुपये देना हाजीजी को खल गया था। लेकिन और कोई रास्ता नहीं था। यही लोग वक्त पर काम आते हैं। कामरेड थानसिंह ने जिस जमाने में मजदूरों से दोस्ती करनी शुरू की तो हाजीजी ने जुग्गन ही से कहा था। और जुग्गन ने सब ठीक कर दिया था।

हाजीजी ने टोपी उतारी, सिर पर हाथ फेरा और 'अल्लाह-अल्लाह' करके तख्त पर लेट गए। अंदर कारखाने में काम हो रहा था। हाजी जी ने लेटे-ही-लेटे एक अंगड़ाई ली और जोर से बोले, ''रहमत, मुझे एक कटोरा पानी पिला दे।''

अंदर लोहा पीटने और छोटे-बड़े हथौड़े चलने की आवाजों में हाजीजी की आवाज दब गयी। वह फिर जोर से चिल्लाये, ''कहां रहते हो? तुम्हें घंटों से बुला रहा था, ''हाजीजी रहमत को देखकर बोले। वह अंदर से निकलकर आया था। ''मुझे एक कटोरा पानी पिला दो। और वह आर्डरवाला खत लिखा या नहीं? आज स्टेशन से बिल्टी भी छुड़ानी है। और लीवर, कमानी, स्क्रु का काम जो मोहल्ले में बंटा था, वापस हो गया?'' वह पांव-तकिये से लगाकर बैठ गए। उनकी बड़ी तोंद एक छोटा-सा टीला लगने लगी। आठवीं पास रहमत हाजीजी का मैनेजर है। दतर में झाडू देने से लेकर लिखा पढ़ी तक का काम करता है। हाजीजी उससे बड़ा खुश रहते हैं, लेकिन कभी जाहिर नहीं होने देते। सौ रुपये में ऐसा मैनेजर आजकल कहां मिलेगा?

''रब्बन ही का काम अभी तक नहीं आया है। फसाद में उसका घर जल गया था न! इस वजह से।''

''कितने का माल था?''

''तीन सौ का।''

''ठीक है। मजदूरी में धीरे-धीरे काट लो। आये तो और माल बनाने को दे देना। अल्लाह-अल्लाह कौम पर क्या मुसीबत आयी है।'' वह पानी पीकर फिर लेट गये।

लीवर, कमानी, स्क्रू, रिपिट और कवर बनाने का काम हाजीजी मोहल्ले में बंटवा देते हैं, बल्कि औरतें खुद ही आकर ले जाती हैं। ये छोटे-मोटे काम औरतें-बच्चें ..कर लेते हैं। दिन-भर औरतें, लड़कियां और बच्चे काम करके शाम कारखाने में आकर दे जाते हैं और महीने में हिसाब हो जाता है। हाजी जी बड़े फख से कहते हैं, ''इसीलिए तो मैं बड़ी

मशीनें नहीं लगाता। गरीबों की रोटी मारी जायेगी। अभी कम–से–कम पेटभर खाना तो मिल जाता है।''

हाजीजी पढ़े कम लेकिन कढ़े ज्यादा हैं। उन्हें मालूम है कि बड़ी मशींने लगाने से वह मिट सकते हैं। वह घाटे का काम है। अभी तो फैक्ट्री एक्ट ही नहीं लागू होता 'हाजी करीम एंड को' पर, जो काम कम–से–कम तीन सौ आदमी करते, मोहल्ले की औरतें कर देती हैं। लेबर इंस्पेक्टर के आने से पहले ही चंदू का लौंडा जो लेबर आफिस में चपरासी है, आकर हाजीजी को बता देता है। हाजी आधे से ज्यादा मजदूरों और कारीगरों को पिछली खिड़की से बाहर कर देते हैं। ऐसी बात नहीं कि लेबर इंसपेक्टर नहीं जानता। हाजी को मुंह बंद करने के तरीके मालूम हैं। अब जब फैक्ट्री एक्ट ही नहीं लागू हो पाता तो छुट्टियां, बोनस, ई. एस. आई. का झगड़ा ही खत्म हो जाता है। हाजीजी इतवार की छुट्टी भी नहीं देते। कहते हैं, वही होगा जो होता चला आया है। जिसे न करना हो वह वीरेन्द्र बाबू के कारखाने में चला जाये। वीरेन्द्र बाबू के कारखाने का नाम आते ही सबके चेहरे सुत जाते हैं। सैकड़ों हिन्दुओं के बीच एक–आध मुसलमान कैसे काम कर सकता है, अगर किसी दिन फसाद हो गया तो....?

हाजीजी कर्रा पड़ने के बाद मुसलमान लहजे में समझाते हैं। ''इस्लाम तुम्हें यहां सिखाता है कि एक मुसलमान के कारखाने में काम छोड़कर थोड़े से लालच में हिंदू के कारखाने में चले जाओ? वीरेन्द्र बाबू से तुम्हारा क्या रिश्ता है? मैंने माना कि तुमको यहां तकलीफ है थोड़ी, लेकिन आराम भी तो है। ईद–बकरीद की छुट्टी देता हूं। नमाज–रोजे में तुम्हारे साथ हूँ। अरे भाई, मैं तो यहां से वहां तक तुम्हारे साथ हूं। कोई ज्यादाती करूं तो अल्लाह के यहा दामन थाम सकते हो। लेकिन वीरेन्द्र बामू के यहां क्या करोगे? अगर कभी फसाद हो गया तो मार ही तो दिए जाओगे न? इस्लाम की सारी तालीमात को भूल गये हो? यही तो कौम में सबसे बड़ी खराबी है कि एक मुसलमान किसी दूसरे भाई का फायदा नहीं देख सकता। जाओ भाई जाओ, जिसे जाना हो जाओ। मैं तो वही करूंगा जो करता आया हूं।'' वह अपनी लाल आंखों से मजदूरों की तरफ देखते हैं, ''जाओ वीरेन्द्र बाबू के कारखाने ! अपने मुसलमान भाई के मिट जाने की परवाह क्यों करते हो?'' उनकी आंखों में आंसू आ जाते हैं, 'अल्लाह–अल्लाह'। कोई नहीं जाता। सब सच्चे मुसलमान हैं। पावर प्रेस चलने लगती हैं। लोहा गलाया जाने लगता है। और पुराना बड़ा मकान धुएं और उसकी बदबू से भर जाता है। सेठ हाजी करीम बाहरी कमरे यानी ऑफिस में गाव–तकिये से लगाकर लेट जाते हैं। सोचते हैं, 'अल्लाह की बड़ी मेहरबानी है उन पर। दूसरे कारखानों में कभी पी.एफ के लिए हड़ताल होती है तो कभी कंपंसेशन ग्रेच्युटी के लिए धरना होता है। ले–ऑफ और लॉक आउट के चक्करों में कहीं काम हो सकता है? इनकमटैक्स, प्रोफेशनल टैक्स और पता नहीं कैसे–कैसे टैक्स लगे हुए हैं। किसी मजदूर को निकाल नहीं

सकते, किसी को रख नहीं सकते तो फिर मालिक काहे के?' हाजीजी 'अल्लाह-अल्लाह' करके फिर लेट गये। कारखाने में काम हो रहा था।

❑❑❑

ज़ख्म

बदलते हुए मौसमों की तरह राजधानी में सांप्रदायिक दंगों का भी मौसम आता है। फर्क इतना है कि दूसरे मौसमों के आने-जाने बारे में जैसे स्पष्ट अनुमान लाए जा सकते हैं वेसे अनुपाल सांप्रदायिक दंगों के मामले में नहीं लगते। फिर भी पूरा शहर यह मानने लगा है कि सांप्रदायिक दंगा भी मौसमों की तरह निश्चित रूप से आता है। बात इतनी सहज-साधारण बना दी गई है कि सांप्रदायिक दंगों की खबरें लोग इसी तरह सुनते हैं जैसे 'गर्मी बहुत बढ़ गई है' या 'अब की पानी बहुत बरसा' जैसी खबरें सुनी जाती हैं। दंगों की खबर सुनकर बस इतना ही होता है कि शहर का एक हिस्सा 'कर्फ्यूग्रस्त' हो जाता है। लोग रास्ते बदल लेते हैं। इस थोड़ी-सी असुविधा पर मन-ही-मन कभी-कभी खीज जाते हैं, उसी तरह जैसे बेतरह गर्मी पर या लगातर पानी बरसने पर कोफ्त होती है। शहर के सारे काम यानी उद्योग, व्यापार, शिक्षण, सरकारी काम-काज सब सामान्य ढंग से चलता रहता है। मंत्रिमंडल की बैठकें होती हैं। संसद के अधिवेशन होते हैं। विरोधी दलों के धरने होते हैं। प्रधानमंत्राी विदेश यात्राओं पर जाते हैं, मंत्राी उद्घाटन करते हैं, प्रेमी प्रेम करते हैं, चोर चोरी करते हैं। अखबार वाले भी दंगे की खबरों में कोई नया या चटपटापन नहीं पाते और प्राय: हाशिए पर ही छाप देते हैं। हां, मरने वालों की संख्या अगर बढ़ जाती है तो मोटे टाइप में खबर छपती है, नहीं तो सामान्य।

यह भी एक स्वस्थ परंपरा-सी बन गई है कि सांप्रदायिक दंगा हो जाने पर शहर में 'सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन' होता है। सम्मेलन के आयोजकों तथा समर्थकों के बीच अक्सर इस बात पर बहस हो जाती है कि दंगा होने के तुरंत बाद न करके सम्मेलन इतने देर में क्यों किया गया। इस इल्ज़ाम का जवाब आयोजकों के पास होता है। वे कहते हैं कि प्रजातांत्रिक तरीके से काम करने में समय लग जाता है। जबकि गैर-प्रजातांत्रिक तरीके से किए जाने वाले काम फट से हो जाते हैं जैसे दंगा। लेकिन दंगों के विरेध में सम्मेलन करने में समय लगता है। क्योंकि किसी वामपंथी पार्टी की प्रांतीय कमेटी सम्मेलन करने का सुझाव राष्ट्रीय कमेटी को देती है। राष्ट्रीय कमेटी एक तदर्थ समिति बना देती है ताकि सम्मेलन की रूपरेखा तैयार की जा सके। तदर्थ समिति अपने सुझाव देने में कुछ समय लगाती है। उसके बाद उसकी सिफारिशें राष्ट्रीय कमेटी में जाती हैं। राष्ट्रीय कमेटी में उन पर चर्चा होती है और एक नई कमेटी बनाई जाती है जिसका काम सम्मेलनि के स्वरूप के अनुसार काम करना

होता है। अगर राय यह बनती है कि सांप्रदायिकता जैसी गंभीर मसले पर होने वाले सम्मेलन में सभी वामपंथी लोकतांत्रिक शक्तियों को एक मंच पर लाया जाए, तो दूसरे दलों से बातचीत होती है। दूसरे दल भी जनतांत्रिक तरीके से अपने शामिल होने के बारे में निर्णय लेते हैं। उसके बाद यह कोशिश की जाती है कि 'सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलन' में सांप्रदायिक सद्भाव बनाने के लिए नामी हिंदू, मुसलमान, सिख नागरिकों का होना भी जरूरी है। उनके नाम सभी दल जनतांत्रिक तरीके से तय करते हैं। अच्छी बात है कि शहर में ऐसे नामी हिंदू, मुस्लिम, सिख नागरिक हैं जो इस काम के लिए तैयार हो जाते हैं। उन नागरिकों की एक सूची है, उदाहरण के लिए भारतीय वायुसेना से अवकाश प्राप्त एक लेटीनेंट हैं, जो सिख हैं, राजधानी के एक अल्पसंख्यकनुमा विश्वविद्यालय के उप-कुलपति मुसलमान हैं तथा विदेश सेवा से अवकाश प्राप्त एक राजपूत हिंदू हैं, इसी तरह के कुछ और नाम भी हैं। ये सब भले लोग हैं, समाज और प्रेस में उनका बड़ा सम्मान है। पढ़े-लिखे तथा बड़े-बड़े पदों पर आसीन या अवकाशप्राप्त। उनके सेकुलर होने में किसी को कोई शह नहीं हो सकता। और वे हमेशा इस तरह के सांप्रदायिकता विरोधी सम्मेलनों में आने पर तैयार हो जाती हैं। एक दिन सो कर उठा और हस्बे-दस्तूर आंखें मलते हुआ अखबार उठाने बालकनी पर आया तो हेडिंग थी 'पुरानी दिल्ली में दंग हो गया। तीन मारे गए। बीस घायल। दस की हालत गंभीर। पचास लाख की संपत्ति नष्ट हो गई।' पूरी खबर पढ़ी तो पता चला कि दंगा कस्साबपुरे में भी हुआ है। कस्साबपुरे का खयाल आते ही मुख्तार का खयाल आ गया। वह वहीं रहता था। अपने ही शहर का था। सिलाई का काम करता था कनाट प्लेस की एक दुकान में। अब सवाल ये था कि मुख्यतार से कैसे 'कॉन्टैक्ट' हो। कोई रास्ता नहीं था, न फोन, न कर्फ्यूपास और न कुछ और।

मुख्तार और मैं, जैसा कि मैं लिख चुका हूं, एक ही शहर के हैं। मुख्तार दर्जा आठ तक इस्लामिक स्कूल में पढ़ा था और फिर अपने पुश्तैनी सिलाई के धंधे में लग गया था। मैं उससे बहुत बाद में मिला था। उस वक्त जब मैं हिंदी में एम.ए. करने के बाद बेकारी और नौकरी की तलाश से तंग आकर अपने शहर में रहने लगा था। वहां मैंने एक रिश्तेदार, जिन्हें हम सब हैदर हथियार कहा करते थे, आवारगी करते थे। आवारगी का मतलब कोई गलत न लीजिएगा, मतलब ये कि बेकार थे। इंटर में कई बार फेल हो चुके थे और उनका शहर में जनसंपर्क अच्छा था। तो उन्होंने मेरी मुलाकात मुख्तार से कराई थी। पहली, दूसरी और तीसरी मुलाकात में वह कुछ नहीं बोला था। शहर की मुख्य सड़क पर सिलाई की एक दुकान में वह काम करता था और शाम को हम लोग उसकी दुकान पर बैठा करते थे। दुकान का मालिक बफाती भाई मालदान और बाल-बच्चेदार आदमी था। वह शाम के सात बजते ही दुकान की चाबी मुख्तार को सौंपकर और भैंसे का गोश्त लेकर घर चला जाता था। उसके बाद वह दुकान मुख्तार की होती थी। एक दिन अचानक हैदर हथियार ने यह राज खोला कि

मुख्तार भी 'बिरादर' है। 'बिरादर' का मतलब भाई होता है, लेकिन हमारी जुबान में 'बिरादर' का मतलब था जो आदमी शराब पीता हो।

शुरू-शुरू में मुख्तार का मुझसे जो डर था वह दो-चार बार साथ पीने से खत्म हो गया था। और मुझे ये जानकर बड़ी हैरत हुई थी कि वह अपने समाज और उसकी समस्याओं में रुचि रखता है। वह उर्दू का अखबार बराबर पढ़ता था। खबरें ही नहीं, खबरों का विश्लेषण भी करता था और उसका मुख्य विषय हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता थी। जब मैं उससे मिला था तब, अगर बहुत सीधी जुबान से कहें तो वह पक्का मुस्लिम सांप्रदायिक था। शराब पीकर जब वह खुलता था तो शेर की तरह दहाड़ने लगता था। उसका चेहरा लाल हो जाता था। वह हाथ हिला-हिलाकर इतनी कड़वी बातें करता था कि मेरे जैसा धैर्यवान न होत तो कब की लड़ाई हो गई होती। लेकिन मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में रहने और वहां 'स्टूडेंट्स फेडरेशन' की राजनीति करने के कारण थोड़ा पक चुका था। मुझे मालूम था कि भावुकता और आक्रोश का जवाब केवल प्रेम और तर्क से दिया जा सकता है। वह मुहम्मद अली जिन्ना का भक्त था। श्रद्धावश उनका नाम नहीं लेता था। बल्कि उन्हें 'कायदे आजम' कहता था। उसे मुस्लिम लीग से बेपनाह हमदर्दी थी और वह पाकिस्तान के बनने औ द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को बिल्कुल सही मानता था। पाकिस्तान के इस्लामी मुल्क होने पर वह गर्व करता था और पाकिस्तान को श्रेष्ठ मानता था।

मुझे याद है कि एक दिन उसकी दुकान में मैं, हैदर हथियार और उमाशंकर बैठे थे। शाम हो चुकी थी। दुकान के मालिक बफाती भाई जा चुके थे। कड़कड़ाते जाड़े के दिन थे। बिजली चली गई थी। दुकान में एक लैंप जल रहा था, उसकी रोशनी में मुख्तार मशीन की तेजी से एक पैंट सी रहा था। अर्जेंट काम था। लैंप की रोशनी की वजह से सामने वाली दीवार पर उसके सिर की परछाईं एक बड़े आकार में हिल रही थी। मशीन चलने की आवाज से पूरी दुकान थर्रा रही थी। हम तीनों मुख्तार के काम खत्म होने का इंतजार कर रहे थे। प्रोग्राम यह था कि उसके बाद 'चुस्की' लगाई जाएगी। आधे घंटे बाद काम खत्म हो गया और चार 'चाय की प्यालियां' लेकर हम बैठ गए। बातचीत घूर-फिर कर पाकिस्तान पर आ गई। हस्बे-दस्तूर मुख्तार पाकिस्तान की तारीफ करने लगा। 'कायदे आजम' की बुद्धिमानी के गीत गाने लगा। उमाशंकर से उसका कोई पर्दा न था, क्योंकि दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते थे। कुछ देर बाद मौका देखकर मैंने कहा, "ये बताओ मुख्तार, जिन्ना ने पाकिस्तान क्यों बनवाया?"

"इसलिए कि मुसलमान वहां रहेंगे," वह बोला।

"मुसलमान तो यहां भी रहते हैं।"

"वो इस्लामी मुल्क है।"

"ठीक है, लेकिन ये बताओ कि वहां गरीबों-अमीरों में वैसा ही फर्क नहीं है

जैसा यहां है, क्या वहां रिश्वत नहीं चलती; क्या वहां भाई–भतीजावाद नहीं है; क्या वहां पंजाबी–सिन्धी और मोहाजिर 'फीलिंग' नहीं है? क्या पुलिस लागों को फंसाकर पैसा नहीं वसूलती?'' मुख्तार चुप हो गया। उमाशंकर बोले, ''हां, बताओ...अब चुप काहे हो गये?'' मुख्तार ने कहा, ''हां, ये सब तो जहां भी है लेकिन है तो इस्लामी मुल्क।''

''यार, वहां डिक्टेटरशिप है, इस्लाम तो बादशाहत तक के खिलाफ है, तो वो कैसा इस्लामी मुल्क हुआ?

''अमें छोड़ो...क्या औरतें वहां पर्दा करती हैं? बैंक तो वहां भी ब्याज लेते–देते होंगे...फिर काहे का इस्लामी मुल्क?'' उमाशंकर ने कहा।

''भइया, इस्लाम 'मसावात' सिखाता है...मतलब बराबरी, तुमने पाकिस्तान में बराबरी देखी?''

मुख्तार थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। फिर अचानक फट पड़ा, ''और यहां क्या है मुसलमानों के लिए? इलाहाबाद, अलीगढ़, मेरठ, मुरादाबाद, दिल्ली–भिवण्डी–कितने नाम गिनाऊं...मुसलमानों की जान इस तरह ली जाती है जैसे कीड़े–मकोड़े हों।''

''हां, तुम ठीक कहते हो।''

''मैं कहता हूं ये फसाद क्यों होते हैं।''

''भाई मेरे, फसाद होते नहीं, कराये जाते हैं।''

''कराये जाते हैं?''

''हां भाई, अब तो बात जग जाहिर है।''

''कौन कराते हैं?''

''जिन्हें उससे फायदा होता है।''

''किन्हें उससे फायदा होता है?''

''वो लोग जो मजहब के नाम पर वोट मांगते हैं। वो लोग जो मजहब के नाम पर नेतागिरी करते हैं?''

''कैसे?''

''देखो, जरा सिर्फ तसव्वुर करो कि हिंदुस्तान में हिंदुओं, मुसलमानों के बीच कोई झगड़ा नहीं है, कोई बाबरी मस्जिद नहीं है। कोई राम–जन्मभूमि नहीं हैं। सब प्यार से रहते हैं, तो भाई, ऐसा हालात में मुस्लिम लीग या आर.एस.एस के नेताओं के पास कौन जायेगा? उनका तो वजूद ही खत्म हो जायेगा। इस तरह समझ लो कि किसी शहर में कोई डॉक्टर है जो सिर्फ कान का इलाज करता है और पूरे शहर में सब लोगों के कान ठीक हो जाते हैं। किसी को कान की कोई तकलीफ नहीं है, तो डॉक्टर को अपना पेशा छोड़ना पडेग़ा या शहर छोड़ना पड़ेगा।''

''वह चुप हो गया। शायद वह अपना जवाब सोच रहा था। मैं फिर कहा, ''और

फिरकापरस्ती से उन लोगों को भी फायदा होता है जो इस देश की सरकार चला रहे हैं।''

''कैसे?''

''अगर तुम्हारे दो पड़ोसी आपस में लड़ रहे हैं, एक-दूसरे के पक्के दुश्मन हैं, तो तुम्हें उन दोनों से कोई खतरा नहीं हो सकता...उसी तरह हिंदू और मुसलमान आपस में ही लड़ते रहे तो सरकार से क्या लड़ेंगे? क्या कहेंगे कि हमारा ये हक है, हमारा वो हक है और तीसरा फायदा उन लोगों को पहुंचता है जिनका कारोबार उसकी वजह से तरक्की करता है। अलीगढ़ में फसाद, भिवण्डी के फसाद इसकी मिसालें हैं।''

ये तो शुरुआत थी। धीरे-धीरे ऐसा होने लागा कि हम लोग जब भी मिलते थे, बातचीत इन्हीं बातों पर होती। चाय का होटल हो या शहर के बाहर सड़क के किनारे कोई वीरान-सी पुलिया-बहस शुरू हो जाया करती थी। बहस भी अजब चीच है। अगर सामने वाले को बीच बहस मे लग गया कि आप उसे जाहिल समझते हैं, उसका मजाक उड़ा रहे हैं, उसे कम पढ़ा-लिखा मान रहे हैं, तो बहस का अभी कोई अन्त नहीं होता।

उसे जमाने में मुख्तार उर्दू के अखबारों और रिसालों का बड़ा भयंकर पाठक था। शहर में आने वाला शायद ही ऐसा कोई उर्दू अखबार, रिसाला, डाइजेस्ट हो जो वह न पढ़ता हो। इतना ज्यादा पढ़ने की वजह से उसे घटनायें, तिथियां और बयान इस कदर याद हो जाते थे कि बहस में उन्हें बड़े आत्मविश्वास के साथ 'कोट' करता रहता था। एक दिन उसने मुझे उर्दू के कुछ रिसालों और अखबारों का एक पुलिंदा दिया और कहा कि इन्हें पढ़कर आओ तो बहस हो। उर्दू में सामान्यत: जो राजनैतिक पर्चे छपते हैं, उनके बारे में मुझे हल्का-सा इल्म था। लेकिन मुख्तार के दिये के दिये रिसाले जब ध्यान से पढ़े तो भौचक्का रह गया। इन पर्चो में मुसलमानों के साथ होने वाली ज्यादतियों को इतने भयावह और करुण ढंग से पेश किया गया था कि साधारण पाठक पर उनका क्या असर होता होगा, यह सोचकर डर गया। मिसाल के तौर पर इस तरह के शीर्षक थे 'मुसलमानों के खून से होली खेली गयी' या 'भारत में मुसलमान होना गुनाह है' या 'क्या भारत के सभी मुसलमानों को हिंदू बनाया जायेगा' या 'तीन हजार मस्जिदें बना ली गयी है'। उत्तेजित करने वाले शीर्षकों के नीचे खबरें लिखने का जो ढंग था वह भी बड़ा भावुक और लोगों को मरने-मारने या सिर फोड़ लेने पर मजबूर करने वाला था।

वह दो-चार दिन बाद मिला तो बड़ा उतावला हो रहा था। बातचीत करने के लिए बोला, ''तुमने पढ़ लिये सब अखबार?''

''हां, पढ़-लिये।''

''क्या राय है...अब तो पता चला कि भारत में मुसलमानों के साथ क्या होता है। हमारी जान-माल इज्जत-आबरू कुछ भी महफूज नहीं है।''

''हां, वो तो तुम ठीक कहते हो...लेकिन एक बात ये बताओ कि तुमने जो

रिसाले दिये हैं वो फिरकापरस्ती को दूर करने, उसे खत्म करने के बारे में कभी कुछ नहीं लिखते?''

''क्या मतलब?'' वह चौक गया।

''देखो, मैं मानता हूं मुसलमानों के साथ ज्यादती होती है, दंगों में सबसे ज्यादा वही मारे जाते हैं। पी.ए.सी भी उन्हें मारती है और हिंदू भी मारते हैं। मुसलमान भी मारते हैं हिंदुओं को। ऐसा नहीं है कि वे चुप बैठे रहते हों...।''

''हां, तो कब तक बैठे रहें, क्यों न मारें?'' वह तड़पकर बोला।

''ठीक है तो वो तुम्हें मारें तुम उनको मारे...फिर ये रोना-धोया कैसा?''

''क्या मतलब है इसी तरह मारकाट होती रही तो क्या फिरकापरस्ती खत्म हो जायेगी?''

''नहीं, नहीं खत्म होगी।''

''और, तुम चाहते हो, फिरकापरस्ती खत्म हो जाये?''

''हां।''

''तो ये अखबार, जो तुमने दिये, क्यों नहीं लिखते कि फिरकापरस्ती कैसे खत्म की जा सकती है?''

''ये अखबार क्यों नहीं चाहते होंगे कि फिरकापरस्ती खत्म हो?''

''ये तो वही अखबार वाले बता सकते हैं। जहां तक मैं समझता हूं ये अखबार बिकते ही इसलिए हैं कि इनमें दंगों की भयानक दर्दनाक और बढ़ा-चढ़ाकर पेश गयी तस्वीरें होती हैं। अगर दंगे न होंगे तो ये अखबार कितने बिकेंगे!''

मेरी इस बात पर वह बिगड़ गया। उसका कहना था कि ये कैसे हो सकता है कि मुसलमानों के इतने हमदर्द अखबार ये नहीं चाहते कि दंगे रुकें, मुसलमान चैन से रहें, हिंदू-मुस्लिम इत्तिहाद बने।

कुछ महीनों की लगातार बातचीत के बाद हम लोगों के बीच कुछ बुनियादी बातें साफ हो चुकी थीं। उसे सबसे बड़ी दिलचस्पी इस बात में पैदा हो गयी थी कि दंगे कैसे रोके जा सकते हैं। हम दोनों ये जानते थे कि दंगे पुलिस पी.ए.सी. प्रशासन नहीं रोक सकता। दंगे साम्प्रदायिक पार्टिया भी नहीं रोक सकतीं, क्योंकि वे तो दंगों पर ही जीवित हैं। दंगों को अगर रोक सकते हैं तो सिर्फ लोग रोक सकते हैं।

''लेकिन लोग तो दंगे के जमाने में घरों में छिपकर बैठ जाते हैं।'' उसने कहा।

''हां, लोग इसलिए छिपकर बैठ जाते हैं क्योंकि दंग करने वालों के मुकाबले वो मुत्तहिद नहीं हैं... अकेला महसूस करते हैं अपने को... और अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता। जबकि दंगा करने वाले 'ऑरगेनाइज' होते हैं... लेकिन जरूरी ये है कि दंगों के ख़िलाफ जिन लोगों को संगठित किया जाए उनमें हिंदू-मुसलमान दोनों हों... और उनके

खयालात इस बारे में साफ हों।''

''लेकिन ये काम करेगा कौन?''

''हम ही लोग, और कौन।''

''लेकिन कैसे?''

''अरे भाई, लोगों से बातचीत करके... मीटिंगें करके... उनको बता-समझाकर... मैं कहता हूं शहर में हिंदू-मुसलमानों का अगर दो सौ ऐसे लोगों का ग्रुप बन जाए जो जान पर खेलकर भी दंगा रोकने की हिम्मत रखते हों तो दंगा करने वालों की हिम्मत पस्त हो जाएगी। तुम्हें मालूम होगा कि दंगा करने वाले बुजदिल होते हैं। वो किसी 'ताकत' से नहीं लड़ सकते। अकेले-दुकेले को मार सकते हैं, आग लगा सकते हैं, औरतों के साथ बलात्कार कर सकते हैं, लेकिन अगर उन्हें पता चल जाए कि सामने ऐसे लोग हैं जो बराबर की ताकत रखते हैं, उनमें हिंदू भी हैं और मुसलमान भी, तो दंगाई सिर पर पैर रखकर भाग जाएंगे।''

वह मेरी बात से सहमत था और हम अगले कदम पर गौर करने की स्थिति में आ गए थे। मुख्तार इस सिलसिले में कुछ नौजवानों से मिला भी था।

कुछ साल के बाद हम दिल्ली में फिर साथ हो गए। मैं दिल्ली में धंधा कर रहा था और वह कनाट प्लेस की एक दुकान में काम करने लगा था और जब दिल्ली में दंगा हुआ और ये पता चला कि कस्साबपुरा भी बुरी तरह प्रभाव में है तो मुझे मुख्तार की फिक्र हो गई। दूसरी तरफ मुख्तार के साथ जो कुछ घटा वह कुछ इस तरह था। ...शाम के छः बजे थे। वह मशीन झुका काम कर रहा था। दुकान मालिक सरदारजी ने उसे खबर दी कि दंगा हो गया है और उसे जल्दी-से-जल्दी घर पहुंच जाना चाहिए।

पहाड़गंज में बस रोक दी गई थी। क्योंकि आगे दंगा हो रहा था। पुलिस किसी को आगे जाने भी नहीं दे रही थी। मुख्तार ने मुख्य सड़क छोड़ दी और गलियों और पिछले रास्तों से आगे बढ़ने लगा। गलियां तक सुनसान थीं। पानी के नलों पर जहां इस वक्त चांव-चांव हुआ करती थी, सिर्फ पानी गिरने की आवाज आ रही थी। जब गलियों में लोग नहीं होते तो कुत्ते ही दिखाई देते हैं। कुत्ते ही थे। वह बचता-बचता इस तरह आगे बढ़ता रहा कि अपने मोहल्ले तक पहुंच जाए। कभी-कभार और कोई घबराया परेशान-सा आदमी लंबे-लंबे कदम उठाता इधर से उधर जाता दिखाई पड़ जाता। एक अजीब भयानक तनाव था जैसे ये इमारतें बारूद की बनी हुई हों और ये सब अचानक एक साथ फट जाएंगी। दूर से पुलिस गाड़ियों के सायरन की आवाजें भी आ रही थीं। कस्साबपुरे की तरफ से हल्का-हल्का धुआं आसमान में फैल रहा था। न जाने कौन जल रहा होगा, न जाने कितने लोगों के लिए संसार खत्म हो गया होगा। न जाने जलने वालों में कितने बच्चे, कितनी औरतें होंगी। उनकी क्या गलती होगी? उसने सोचाअचानक एक बंद दरवाजे के पीछे से किसी औरत की

पंजाबी में कांपती हुई आवाज गली तक आ गई। वह पंजाबी बोल नहीं पाता था लेकिन समझ लेता था। औरत कह रही थी, बबलू अभी तक नहीं लौटा। मुख्तार ने सोचा, उसके बच्चे भी घर के दरवाजे पर खड़े झिर्रियों से बाहर झांक रहे होंगे। शाहिदा उसकी सलामती के लिए नमाज पढ़ रही होगी। भैया छत पर खड़े गली में दूर तक देखने की कोशिश कर रहे होंगे। छत पर खड़े एक-दो और लोगों से पूछ लेते होंगे कि मुख्तार तो नहीं दिखाई दे रहा है। उसके दिमाग में जितनी तेजी से ये खयाल आ रहे थे उतनी तेज उसकी रफ्तार होती जाती थी। सामने पीपल के पेड़ से कस्साबपुरा शुरू होता है और पीपल का पेड़ सामने ही है। अचानक भागता हुआ कोई आदमी हाथ में कनस्तर लिये गली में आया और मुख्तार को देखकर एक पतली गली में घुस गया। अब मुख्तार को हल्का-हल्का शोर भी सुनाई पड़ रहा था। पीपल के पेड़ के बाद खतरा न होगा क्योंकि यहां से मुसलमानों की आबादी शुरू होती थी। ये सोचकर मुख्तार ने दौड़ना शुरू कर दिया पीपल के पेड़ के पास पहुंचकर मुड़ा और उसी वक्त हवा में उड़ती कोई चीज उसके सिर से टकराई और उसे लगा कि सिर आग हो गया है। दहकता हुआ अंगारा। उसने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया ओर भागता रहा। उसे ये समझने में देर नहीं लगी कि एसिड का बल्ब उसके सिर पर मारा गया है। सर की आग लगातार बढ़ती जा रही थी और वह भागता जा रहा था। उसे लगा कि वह जल्दी ही घर न पहुंच गया तो गली में गिरकर बेहोश हो जायेगा और वहां गिरने का नतीजा उसकी लाश पुलिस ही उठायेगी। दोनों बच्चों के चेहरे उसकी नजरों में घूम गये।

दंगा खत्म होने के बाद मैं मुख्तार को देखने गया। उसके बाल भूसे जैसे हो गये थे और लगातार गिरते थे। सिर की खाल बुरी तरह जल गयी थी और जख्म हो गये थे। एसिड का बल्ब लगने के बराबर ही भयानक दुर्घटना ये हुई थी कि जब वह घर पहुंचा था तो उसे पानी से सिर से सिर नहीं धोने दिया गया था। सबने कहा था कि पानी मत डालो। पानी डालने से बहुत गड़बड़ हो जायेगी। और वह खुद ऐसी हालत में नहीं था कि कोई फैसला कर सकता। आठ दिन कर्फ्यू चला था और जब वह डॉक्टर के पास गया था तो डॉक्टर ने उसे बताया था कि अगर वह फौरन सिर धो लेता तो इतने गहरे जख्म न होते।

दंगे के बाद साम्प्रदायिक सद्भावना स्थापित करने के लिए सम्मेलन किये जाने की कड़ी में इन दंगों के तीन महीने बाद सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में मैंने सोचा मुख्तार को ले चलना चाहिए। उसे एक दिन की छुट्टी करनी पड़ी और हम दोनों राजधानी की वास्तविक राजधानी-यानी राजधानी का वह हिस्सा जहां चौड़ी साफ सड़कें, सायादार पेड़, चमचमाते हुए फुटपाथ, ऊंचे-ऊंचे बिजली के खंबे और चिकनी-चिकनी इमारते हैं और वैसे ही चिकने-चिकने लोग हैं। मुख्तार भव्य इमारत में घुसने से पहले कुछ हिचकिचाया, लेकिन मेरे बहादुरी से आगे बढ़ते रहने की वजह से उसमें कुछ हिम्मत आ गयी और हम अंदर आ गये। अंदर काफी चहल-पहल थी। विश्वविद्यालयों के छात्रा, अध्यापक,

संस्थाओं के विद्वान, बड़े सरकारी अधिकारी, दतरों में काम करने वाले लोग, सभी थे। उनमें से अधिकतर चेहरे देखे हुए थे। वे सब वामपंथी राजनीति या उसके जन–संगठनों में काम करने वाले लोग थे। वहां कलाकार, लेखक, बुद्धिजीवी, पत्राकार, रंगकर्मी और संगीतज्ञ भी थे। पूरी भीड़ में में मुख्तार जैसे शायद ही चंद रहे हों या न रहे हों, कहा नहीं जा सकता।

अंदर मंच पर बड़ा–सा बैनर लगा हुआ था। इस पर अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू में 'साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलन' लिखा था। मुझे याद आया कि वही बैनर है जो चार साल पहले हुए भयानक दंगों के बाद किये गये सम्मेलन में लगाया गया था। बैनर पर तारीखों की जगह पर सफेद कागज चिपकाकर नयी तारीखें लिख दी गयी थीं। मंच पर जो लोग बैठे थे वे भी वहीं थे जो पिछले और उससे पहले हुए साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलनों में मंच पर बैठे हुए थे। सम्मेलन होने की जगह भी वही थी। आयोजक भी वही थे। मुझे याद आया। पिछले सम्मेलन के एक आयोजक से सम्मेलन के बाद मेरी कुछ बातचीत हुई थी और मैंने कहा था कि दिल्ली के सर्वथा भद्र इलाके में सम्मेलन करने तथा ऐसे लोगों को ही सम्मेलन में बुलाने का क्या फायदा है जो शत–प्रतिशत हमारे विचारों से सहमत हैं। इस पर आयोजक ने कहा था कि सम्मेलन मजदूर बस्तियों, घनी आबादियों तथा उपनगरीय बस्तियों में भी होंगे। लेकिन मुझे याद नहीं कि उसके बाद ऐसा हुआ हो।

हाल में सीट पर बैठकर मुख्तार ने मुझसे यही बात कही। वह बोला ''इनमें तो हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी।''

मैंने कहा, ''हां!''

वह बोला, ''अगर ये सम्मेलन कस्साबपुरा में करते तो अच्छा था। वहां के मुसलमान ये मानते ही नहीं कि कोई हिन्दू उनसे हमदर्दी रख सकता है।''

''वहां भी करेंगे...लेकिन अभी नहीं।'' तभी कार्यवाही शुरू हो चुकी थीं संयोजक ने बात शुरू करते हुए सांप्रदायिक शक्तियों की बढ़ती हुई ताकत तथा उसके खतरों की ओर संकेत किया। यह भी कहा कि जब तक साम्प्रदायिकता को समाप्त नहीं किया जायेगा तब तक जनवादी शक्तियां मजबूत नही हो सकतीं। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि अब सब संगठित होकर साम्प्रदायिक रूपी दैत्य से लड़ेंगे। इस पर लोगों ने जोर की तालियां बजायीं और सबसे पहले अल्पसंख्यकों के विश्वविद्यालय के उपकुलपति को बोलने के लिए आमंत्रित किया। उपकुलपति आई.ए.एस. सर्विसेज में थे। भारत सरकार के ऊंचे ओहदों पर रहे थे। लम्बा प्रशासनिक अनुभव था। उनकी पत्नी हिन्दू थी। उनकी एक लड़की ने हिन्दू लड़के से विवाह किया था। लड़के की पत्नी अमरीकन थी। उप–कुलपति के प्रगतिशील और धर्म निरपेक्ष होने में कोई संदेह न था। वे एक ईमानदार और प्रगतिशील व्यक्ति के रूप में सम्मानित थे। उन्होंने अपने भाषण में बहुत विद्वतापूर्ण ढंग से

साम्प्रदायिकता की समस्या का विश्लेषण किया। उसके खतरनाक परिणामों की ओर संकेत किये और लोगों को इस चुनौती से निपटने को कहा। कोई बीस मिनट तक बोलकर वे बैठ गये। तालियां बजी।

मुख्तार ने मुझसे कहा, ''प्रोफेसर साहब की समझ तो बहुत सही है।''

''हां, समझ तो उन सब लोगों की बिलकुल सही है जो यहां मौजूद हैं।''

''तो फिर?''

तब एक दूसरे वक्ता बोलने लगे थे। ये एक सरदार जी थे। उनकी उम्र अच्छी-खासी थी। स्वतंत्राता सेनानी थे और दासियों साल पहले पंजाब सरकार में मंत्री रह चुके थे। उन्होंने अपने बचपन, अपने गांव और अपने हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख दोस्तों के संस्मरण सुनाये। उनके भाषण के दौरान लगभग तालियां बजती रही। फिर उन्होंने दिल्ली के हालिया दंगों पर बोलना शुरू किया।

मुख्तार ने मेरे कान में कहा, ''सरदार जी दंगा कराने वालों के नाम क्यों नहीं ले रहे हैं? बच्चा-बच्चा जानता है दंगा किसने कराया था।''

मैंने कहा, ''बचपने वाली बातें न करो। दंगा कराने वालों के नाम ले दिये तो वे लोग इन पर मुकदमा ठोंक देंगे।''

''तो मुकदमे के डर से सच बात न कही जाये?

''तुम आदर्शवादी हो। आइडियलिस्ट...।''

''ये क्या होता है?''मुख्तार बोलां

''अरे यार मकसद है इनका?''

''बताना कि फिरकापरस्ती कितनी खराब चीज है और उसके कितने बुरे नतीजे होते हैं।''

''ये बात तो यहां बैठे सभी लोग मानते हैं। जब ही तो तालियां बजा रहे हैं।''

''तो तुम क्या चाहते हो?''

''ये दंगा कराने वालों के नाम बतायें।'' मुख्तार की आवाज तेज हो गई। वह अपना सिर खुजलाने लगा।

''नाम बताने से क्या फायदा होगा?''

''न बताने से क्या फायदा होगा?''

स्वतंत्राता सेनानी का भाषण जारी था। वे कुछ किये जाने पर बोल रहे थे। इस पर जोर दे रहे थे कि इस लड़ाई को गलियों और खेतों में लड़ने की जरूरत है। स्वतंत्रता सेनानी के बाद एक लेखक को बोलने के लिए बुलाया गया। लेखक ने साम्प्रदायिकता के विरोध में लेखक को बोलने के लिए बुलाया गया। लेखक ने साम्प्रदायिकता के विरोध में लेखकों को एकजुट होकर संघर्ष करने की बात उठाई।

''तुम मुझे एक बात बताओ,'' मुख्तार ने पूछा।

''क्या?''

''जब दंगा होता है तो ये सब लोग क्या करते हैं?''

मैं जलकर बोला, ''अखबार पढ़ते हैं, घर में रहते हैं और क्या करेंगे?''

''तब तो इस जुबानी जमा-खर्च का फायदा क्या है?''

''बहुत फायदा है, बताओ?''

''भाई, एक माहौल बनता है, फिरकापरस्ती के खिलाफ।''

''किन लोगों में? इन्हीं में जो पहले से ही फिरकापरस्ती के खिलाफ हैं? तुम्हें मालूम है दंगों के बाद सबसे पहले हमारे मोहल्ले में कौन आये थे?''

''कौन?''

''तबलीगी जमात और जमाते-इस्लामी के लोग...उन्होंने लोगों को आटा-दाल, चावल बांटा था, उन्होंने दवाएं भी दी थीं। उन्होंने कर्फ्यू पास भी बनवाये थे।''

''तो उनके इस काम से तुम समझते हो कि वे फिरकापरस्ती के खिलाफ हैं?''

''हां या न हों, दिल कौन जीतेगा...वही जो मुसीबत के वक्त हमारे काम आये या जो...

मैं उसकी बात काटकर बोला, ''खैर बाद में बात करेंगे, अभी सुनने दो।''

कुछ देर बाद मैंने उससे कहा, ''बात ये है यार कि इन लोगों के पास इतनी ताकत नहीं कि दंगो के वक्त बस्तियों में जायें।''

''इनके पास उतनी ताकत नहीं है और जमाते इस्लामी के पास है?''

मैं इस वक्त उसके इस सवाल का जबाब न दे पाया। मैंने अपनी पहली ही बात जारी रखी, ''जब इनके पास ज्यादा ताकत आ जायेगी तब ये दंगाग्रस्त इलाकों में जा सकेंगे काम कर सकेंगे।''

''उतनी ताकत कैसे आयेगी?''

''जब ये वहां काम करेंगे।''

''पर अभी तुमने कहा कि इनके पास उतनी ताकत ही नहीं है कि वहां जा सकें...फिर काम कैसे करेंगे।''

''तुम कहना क्या चाहते हो?''

''मतलब यह है कि इनके पास इतनी ताकत नहीं है कि ये दंगे के बाद या दंगे के वक्त उन बस्तियों में जा सके जहां दंगा होता है, और ताकत इनके पास उसी वक्त आयेगी जब ये वहां जाकर काम करेंगे...और जा सकते नहीं।''

''यार, हर वक्त दंगा थोड़ी होता रहता है, जब दंगा नहीं होता तब जायेंगे।''

''अच्छा ये बताओ, जमाते इस्लामी के मुकाबले इन लोगों को कमजोर कैसे

मान रहे हो...इनके तो एम.पी. हैं, दो तीन सूबों में इनकी सरकारें हैं, जबकि जमाते इस्लामी का तो एक एम.पी. भी नहीं।''

मैं बिगड़कर बोला, ''तो तुम ये साबित करना चाहते हो कि ये झूठे, पाखंडी, कामचोर और बेईमान लोग हैं,''

''नहीं, नहीं, ये तो मैंने बिलकुल नहीं कहा! ''वह बोला।

''तुम्हारी बात से मतलब तो यही निकलता है।''

''नहीं, मेरा ये मानना नहीं है।''

मैं धीरे-धीरे उसे समझाने लगा, ''यार, बात दरअसल ये है कि हम लोग खुद मानते हैं कि काम जितनी तेजी से होना चाहिए, नहीं हो रहा है। धीरे-धीरे हो रहा है, लेकिन पक्के तरीके से हो रहा है। उसमें टाइम तो लगता ही है।''

''तुम ये मानते होंगे कि फिरकापरस्ती बढ़ रही है।

''हां।''

''तो ये धीरे-धीरे जो काम हो रहा है उनका कोई असर नहीं दिखाई पड़ रहा है, मैं फिरकापरस्ती जरूरी दिन दूनी रात चौगुनी स्पीड से बढ़ रही है।

''अभी बाहर निकलकर बात करते हैं।''मैंने उसे चुप करा दिया।

इसी बीच चाय सर्व की गयी। आखिरी वक्ता ने समय बहुत हो जाने और सारी बातें कह दी गयी हैं, आदि-आदि कहकर अपना भाषण समाप्त कर दिया। हम दोनों थोड़ा पहले ही बाहर निकल आये। सड़क पर साथ-साथ चलते हुए वह बोला, ''कोई ऐलान तो किसी को करना चाहिए था।''

''कैसा ऐलान?''

''मतलब ये है कि अब ये किया जायेगा, ये होगा।''

''अरे भाई, कहा तो गया कि जनता के पास जायेंगे, उसे संगठित और शिक्षित किया जायेगा।''

''कोई और ऐलान भी कर सकते थे।''

''क्या ऐलान?''

''प्रोफेसर साहब कह सकते थे कि अगर फिर दिल्ली में दंगा हुआ तो वे भूख हड़ताल पर बैठ जायेंगे। राइटर जो थे वो कहते कि फिर दंगा हुआ तो वे अपनी पद्मश्री लौटा देंगे। स्वतंत्राता सेनानी अपना ताम्रपत्र लौटाने की धमकी देते।'' उसकी बात से मेरा मन खिन्न हो गया और चलते-चलते रुक गया। मैंने उससे पूछा, ''ये बताओ तुम्हें इतनी जल्दी, इतनी हड़बड़ी क्यों है?''

वह मेरे आगे झुका। कुछ बोला नहीं। उसने अपने सिर के बाल हटाये। मेरे सामने लाल-लाल जख्म थे जिनसे ताजा खून रिस रहा था।

❑❑❑

मुश्किल काम

जब दंगे खत्म हो गये, चुनाव हो गये, जिन्हें जीतना था जीत गये, जिनकी सरकार बननी थी बन गयी, जिसके घर और जिनके जख्म भरने थे भर गये, तब दंगा करने वाली दो टीमों की एक इत्तफाकी मीटिंग हुई। मीटिंग की जगह आदर्श थी यानी शराब का ठेका जिसे सिर्फ चन्द साल पहले से ही 'मदिरालय' कहां जाने लगा था, वहां दोनों गिरोह जमा थे, पीने-पिलाने के दौरान किसी भी विषय पर बात हो सकती है, तो बातचीत ये होने लगी कि पिछले दंगों में किसने कितनी बहादुरी दिखाई, किसने कितना माल लूटा, कितने घरों में आग में आग लगाई, कितने लोगों को मारा, कितने बम फोड़े, कितनी और औरतों को कत्ल किया, कितने बच्चों की टांगे चीरीं, कितने अजन्मं बच्चों का काम तमाम कर दिया, आदि-आदि।

मदिरालय में कभी कोई झूठ नहीं बोलता, यानी वहां कही गयी बात अदालत में गीता या कूरान पर हाथ रखकर खायी गयी कसम के बराबर होती इसलिए यहां जो कुछ लिखा जा रहा है, सच है और सच के सिवा कुछ नहीं है। खैरियत खैरसल्ला पूछने के बाद बातचीत इस तरह शुरू हुई। पहले गिरोह के नाते ने कहा''तुम लोग तो जन्खे हो, जन्खे...हमने सौ दुकानें फूंकी हैं।''दूसरे ने कहा, ''उसमें तुम्हारा कोई कमाल नहीं है। जिस दिन तुमने आग लगाई, उस दिन तेज हवा चल रही थी...आग तो हमने लगाई थी जिसमें तेरह आदमी जल मरे थे।''

बात चूंकि आग से आदमियों पर आयी थी, इसलिए पहले ने कहा, ''तुम तेरह की बात करते हो? हमने छब्बीस आदमी मारे हैं।'' दूसरा बोला, '' छब्बीस मत कहो।''

''क्यों?''

''तुमने जिन छब्बीस को मारा है... उनमें बारह तो औरतें थीं।''

यह सुनकर पहला हंसा। उसने एक पव्वा हलक में उड़ेल लिया और बोला, ''गधो, तुम समझते हो औरतों को मारना आसान है?''

''हां।''

''नहीं, ये गलत है।'' पहला गरजा।

''कैसे?''

''औरतों की हत्या करने से पहले उनके साथ बलात्कार करना पड़ता है, फिर

उनके गुप्तांगों को फाड़ना-काटना पड़ता है...तब कहीं जाकर उनकी हत्या की जाती है।''

''लेकिन वे होती कमजोर हैं।''

''तुम नहीं जानते औरतें कितनी जोर से चीखती हैं...और किस तरह हाथ-पैर चलाती हैं...उस वक्त उनके शरीर में पता नहीं कहां से ताकत आ जाती है...''

''खैर छोड़ो, हमने कुछ बाइस मारे हैं...आग में जलाये इसके इलावा हैं।'' दूसरा बोला।

पहले ने पूछा, ''बाईस में बूढ़े कितने थे?''

''झूठ नहीं बोलता...सिर्फ आठ थे।''

''बूढों को मारना तो बहुत ही आसान है...उन्हें क्यों गिनते हो?''

''तो क्या तुम दो बूढों को एक जवान के बराबर भी न गिनोगे ?''

''चलो, चार बूढों को एक जवान के बराबर गिन लूंगा।''

''ये तो अंधेर कर रहे हो।''

''अबे अंधेर तू कर रहा है...हमने छब्बीस आदमी मारे हैं...और तू हमारी बराबरी कर रहा है।''

दूसरा चिढ़ गया, बोला, ''तो अब तू जबान ही खुलवाना चाहता है क्या?''

''हां-हां, बोल बे...मुझे किसने रोका है!''

''तो कह दूं सबके सामने साफ-साफ?''

''हां...हां, कह दो।''

''तुमने जिन छब्बीस आदमियों को मारा है...उनमें ग्यारह तो रिक्शे वाले, झल्ली वाले और मजदूर थे, उनको मारना कौन-सी बहादुरी है?''

''तूने कभी रिक्शेवालों, मजदूरों को मारा है?''

''नहीं...मैंने कभी नहीं मारा।'' वह झूठ बोला।

''अबे तूने रिक्शे वालों, झल्ली वालों और मजदूरों को मारा होता तो ऐसा कभी न कहता।''

''क्यों?''

''पहले वे हाथ-पैर जोड़ते हैं..., कहते हैं, बाबूजी, हमें क्यों मारते हो...हम न हिंदू हैं न मुसलमान...न हम वोट देंगे...न चुनाव में खड़े होंगे...न हम गद्दी पर बैठेंगे...न हम राज करेंगे...लेकिन बाद में जब उन्हें लग जाता है कि वे बच नहीं पायेगा तो एक-आध को जख्मी करके ही मरते हैं

दूसरे ने कहा, ''अरे, ये सब छोड़ो...हमने जो बाईस आदमी मारे हैं...उनमें दस जवान थे...कड़ियल जवान...''

''जवानों को मारना सबसे आसान है।''

''कैसे? ये तुम कमाल की बात कर रहे हो!''

''सुनो...जवान जोश में आकर बाहर निकल आते हैं उनके सामने एक-दो नहीं पचासों आदमी होते हैं...हथियारों से लैस...एक आदमी पचास से कैसे लड़ सकता है...आसानी से मारा जाता है।''

इसके बाद 'मदिरायल' में सन्नाटा छा गया, दोनों चुप हो गये। उन्होंने कुछ और पी, कुछ और खाया, कुछ बहके, फिर उन्हें ध्यान आया कि उनका तो आपस में कम्पटीशन चल रहा था।

पहले ने कहा, ''तुम चाहे जो कहो...हमने छब्बीस आदमी मारे हैं...और तुमने बाइस...''

''नहीं, यह गलत है...तुमने हमसे ज्यादा नहीं मारे।''दूसरा बोला।

''क्या उल्टी-सीधी बातें कर रहे हो...हम चार नम्बरों से तुमसे आगे हैं।'' दूसरे ने ट्रम्प का पता चला''तुम्हारे छब्बीस में बच्चे कितने थे,''

''आठ थे।''

''बस, हो गयी बात बराबर।''

''कैसे?''

''अरे, बच्चों को मारना तो बहुत आसान है, जैसे मच्छरों को मारना।''

''नहीं बेटा, नहीं...ये बात नहीं है...तुम अनाड़ी हो।''

दूसरा ठहाका लगाकर बोला, ''अच्छा तो बच्चों को मारना बहुत कठिन है?''

''हां।''

''कैसे?''

''बस, है।''

''बताओ न...''

''बताया तो...''

''क्या बताया?''

''यही कि बच्चों को मारना बहुत मुश्किल काम है...उनको मारना जवानों को मारने से भी मुश्किल है...औरतों को मारने से क्या, मजदूरों को मारने से भी मुश्किल।''

''लेकिन क्यों?''

''इसलिए कि बच्चों को मारते वक्त...''

''हां...हां, बोलों रुक क्यों गये?''

''बच्चों को मारते समय...अपने बच्चे याद आ जाते हैं।''

❑❑❑

मैं हिंदू हूं

ऐसी चीख़ कि मुर्दे भी कब्र में से उठकर खड़े हो जाएं। लगा कि आवाज बिल्कुल कानों के पास से आई है। उन हालात में... मैं उछलकर चारपाई पर बैठ गया, आसमान पर अब भी तारे थे... शायद रात का तीन बजा होगा। अब्बाजान भी उठ बैठे। चीख़ फिर सुनाई दी। सैफू अपनी खुर्रा चारपाई पर लेटा चीख़ रहा था। आंगन में एक सिरे से सबकी चारपाइयां बिछी थीं।

''लाहौलविलाकुव्वत...'' अब्बाजान ने लाहौल पढ़ी।

''ख़ुदा जाने ये सोते-सोते क्यों चीख़ने लगता है।'' अम्मां बोलीं।

''अम्मां इसे रात भर लड़के डराते हैं...'' मैंने बताया।

''उन मुओं को भी चैन नहीं पड़ता... लोगों की जान पर बनी है और उन्हें शरारत सूझती है।'' अम्मां बोलीं।

सफिया ने चादर से मुंह निकालकर कहा, ''इससे कहो छत पर सोया करे।''

सैफू अब तक नहीं जगा था। मैं उसके पलंग के पास गया और झुककर देखा कि उसके चेहरे पर पसीना था। सांस तेज-तेज चल रही थी और जिस्म कांप रहा था। बाल पसीने में तर हो गए और कुछ लटें माथे पर चिपक गई थीं। मैं सैफू को देखता रहा और उन लड़कों के प्रति मन में गुस्सा घुमड़ता रहा जो उसे डराते हैं।

तब दंगे ऐसे नहीं हुआ करते थे जैसे आजकल होते हैं। दंगों के पीछे छिपे दर्शन, रणनीति, कार्यपद्धति और गति में बहुत परिवर्तन आया है। आज से पच्चीस-तीस साल पहले न तो लोगों को जिंदा जलाया जाता था और न पूरी की पूरी बस्तियां वीरान की जाती थीं। उस जमाने में प्रधानमंत्रियों, गृहमंत्रियों और मुख्यमंत्रियों का आशीर्वाद भी दंगाइयों को नहीं मिलता था। यह काम छोटे-मोटे स्थानीय नेता अपना स्थानीय और क्षुद्र किस्म का स्वार्थ पूरा करने के लिए करते थे। व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता, जमीन पर कब्जा करना, चुंगी के चुनाव में हिंदू या मुस्लिम वोट समेट लेना वगैरा उद्देश्य हुआ करते थे। अब तो दिल्ली दरबार पर कब्जा जमाने का साधन बन गए हैं सांप्रदायिक दंगे। संसार के विशालतम लोकतंत्र की नाक में वही नकेल डाल सकता है जो सांप्रदायिक हिंसा और घृणा पर खून की नदियां बहा सकता हो।

सैफू को जगाया गया। वह बकरी के मासूम बच्चे की तरह चारों तरफ इस तरह देख

रहा था जैसे मां की तलाश कर रहा है। अब्बाजान के सौतेले भाई की सबसे छोटी औलाद सैफुद्दीन उर्फ सैफू ने जब अपने को घर के सभी लोगों से घिरे देखा तो अकबका कर खड़ा हो गया।

सैफू के अब्बा कौसर चर्चा के मरने का आया कोना-कटा पोस्टकार्ड मुझे अच्छी तरह याद है। गांव वालों ने ख़त में कौसर चर्चा के मरने की खबर ही नहीं दी थी बल्कि ये भी लिखा था कि उनका सबसे छोटा बेटा सैफू अब इस दुनिया में अकेला रह गया है। सैफू के बड़े भाई उसे अपने साथ, बंबई नहीं ले गए। उन्होंने कह दिया है कि सैफू के लिए वे कुछ नहीं कर सकते। अब अब्बाजान के अलावा उसका दुनिया में कोई नहीं है। कोना-कटा पोस्टकार्ड पकड़े अब्बाजान बहुत देर तक खामोश बैठे रहे थे। अम्मां से कई बार लड़ाई होने के बाद अब्बाजान पुश्तैनी गांव धनवाखेड़ा गए थे और बची-खुची जमीन बेच, सैफू को साथ लेकर लौटे थे। सैफू को देखकर हम सबको हंसी आई थी। किसी गंवार लड़के को देखकर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के स्कूल में पढ़नेवाले लड़के और अब्दुल्ला गर्ल्स कॉलेज के स्कूल में पढ़ने वाली सफिया की और क्या प्रतिक्रिया हो सकती थी। पहले दिन ही यह लग गया था कि सैफू सिर्फ गंवार ही नहीं है बल्कि अधपागल होने की हद तक सीधा या बेवकूफ है। हम उसे तरह-तरह से चिढ़ाया या बेवकूफ बनाया करते थे। इसका एक फायदा सैफू को इस तौर पर हुआ कि अब्बाजान और अम्मां का उसने दिल जीत लिया। सैफू मेहनत का पुतला था। काम करने से कभी न थकता था। अम्मां को उसकी ये 'अदा' बहुत पसंद थी। अगर दो रोटियां ज्यादा खाता है तो क्या? काम भी तो कमर तोड़ करता है। सालों पर साल गुजरते गए और सैफू हमारी जिंदगी का हिस्सा बन गया। हम सब उसके साथ सहज होते चले गए। अब मोहल्ले का कोई लड़का उसे पागल कह देता था तो मैं उसका मुंह नोंच लेता था। हमारा भाई है, तुमने पागल कहा कैसे? लेकिन घर के अंदर सैफू की हैसियत क्या थी ये हमीं जानते थे।

शहर में दंगा वैसे ही शुरू हुआ था जैसे हुआ करता थायानी मस्जिद में किसी को एक पोटली मिली थी जिसमें किस किस्म का गोश्त था और गोश्त को देखे बगैर ये तय कर लिया गया था कि चूंकि वो मस्जिद में फेंका गया गोश्त है इसलिए सुअर के गोश्त के सिवा और किसी जानवर को हो ही नहीं सकता। इसकी प्रतिक्रिया में मुग़ल टोले में गाय काट दी गई थी और दंगा भड़क गया था। कुछ दुकानें जली थीं और ज्यादातर लूटी गई थीं। चाकू-छुरी की वारदातों में करीब सात-आठ लोग मरे थे, लेकिन प्रशासन इतना संवेदनशील था कि कर्यू लगा दिया गया था। आजकल वाली बात न थी। हज़ारों लोगों के मारे जाने के बाद भी मुख्यमंत्री मूंछों पर ताव देकर घूमता और कहता कि जो कुछ हुआ सही हुआ।

दंगा चूंकि आसपास के गांवों तक भी फैल गया था इसलिए कर्फ्यू बढ़ा दिया गया था। मुग़लपुरा मुसलमानों का सबसे बड़ा मोहल्ला था इसलिए वहां कर्यू का असर भी था और

'जिहाद' जैसा माहौल भी बन गया था। मोहल्ले की गलियां तो थीं ही पर कई दंगों के तजरुबों ने यह भी सिखा दिया था कि घरों के अंदर से भी रास्ते होने चाहिए। यानी इमरजेंसी पैकेज। जो घरों के अंदर से, छातों के ऊपर से, दीवारों को फलांगते कुछ ऐसे रास्ते भी बन गए थे कि कोई अगर उनको जानता हो तो मोहल्ले के एक कोने से दूसरे कोने तक आसानी से जा सकता था। मोहल्ले की तैयारी युद्धस्तर की थी। सोचा गया था कि कर्फ्यू अगर महीने भर भी खिंचता है तो जरूरत की सभी चीजें मोहल्ले में ही मिल जाएं।

दंगा मोहल्ले के लड़कों के लिए एक अजीब तरह के उत्साह दिखाने का मौसम हुआ करता था। अजी हम तो हिंदुओं को जमीन चटा देंगे; समझ क्या रखा है धोती बांधनेवालों ने... अजी बुजदिल होते है... एक मुसलमान दस हिंदुओं पर भारी पड़ता है... ''हंस के लिया है पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिंदुस्तान'' जैसा माहौल बन जाता था, लेकिन मोहल्ले से बाहर निकलने में सबकी नानी मरती थी। पीएसी की चौकी दोनों मुहानों पर थी। पीएसी के बूटों और उनके राइफलों के बटों की मार कई को याद थी इसलिए जबानी जमा-खर्च तक तो सब ठीक था, लेकिन उसके आगे...

संकट एकता सिखा देता है। एकता अनुशासन और अनुशासन व्यावहारिकता। हर घर से एक लड़का पहरे पर रहा करेगा। हमारे घर में मेरे अलावा उस जमाने में मुझे लड़का नहीं माना जा सकता था, क्योंकि मैं पच्चीस पार कर चुका था; लड़का सैफू ही था इसलिए उसे रात के पहरे पर रहना पड़ता था। रात का पहरा छतों पर हुआ करता था। मुग़लपुरा चूंकि शहर के सबसे ऊपरी हिस्से में था इसलिए छतों पर से पूरा शहर दिखाई देता था। मोहल्ले के लड़कों के साथ सैफू पहरे पर जाया करता था। यह मेरे, अब्बाजान, अम्मां और सफिया सभी के लिए बहुत अच्छा था। अगर हमारे घर में सैफू न होता तो शायद मुझे रात में धक्के खाने पड़ते। सैफू के पहरे पर जाने की वजह से उसे कुछ सहूलियतें भी दे दी गई थीं, जैसे उसे आठ बजे तक सोने दिया जाता था, उससे झाड़ू नहीं दिलवाई जाती थी। यह काम सफिया के हवाले हो गया था जो इसे बेहद नापसंद करती थी।

कभी-कभी रात में मैं भी छतों पर पहुंच जाता था। छतों की दुनिया पर मोहल्ले के लड़कों का राज हुआ करता था। लाठी, डंडे, बल्लम और ईंटों के ढेर इधर-उधर लगाए गए थे। दो-चार लड़कों के पास देशी कट्टे और ज्यादातर के पास चाकू थे। उनमें से सभी छोटा-मोटा काम करने वाले कारीगर थे। ज्यादातर ताले के कारखाने में काम करते थे। कुछ दर्जीगिरी, बढ़ईगिरी जैसे काम करते थे। चूंकि इधर बाज़ार बंद था इसलिए उनके धंधे भी ठप्प थे। उनमें से ज्यादातर के घरों में कर्ज से चूल्हा जल रहा था। लेकिन वो खुश थे। छतों पर बैठकर वे दंगों की ताजा खबरों पर तब्सिरा किया करते थे या हिंदुओं को गालियां दिया करते थे। हिंदुओं से ज्यादा गालियां वे पीएसी को देते थे। पाकिस्तान रेडियो का पूरा प्रोग्राम उन्हें जबानी याद था और कम आवाज में रेडियो लाहौर सुना करते थे। इन लड़कों में दो-

चार जो पाकिस्तान जा चुके थे उनकी इज्जत हाजियों की तरह होती थी। जो पाकिस्तान की रेलगाड़ी 'तेजगाम' और 'गुलशने इकबाल कॉलोनी' के ऐसे किस्से सुनाते थे कि लगता स्वर्ग अगर पृथ्वी पर कहीं है तो पाकिस्तान में है। पाकिस्तान की तारीफों से जब उनका दिल भर जाया करता था तो सैफू से छेड़छाड़ किया करते थे। सैफू ने पाकिस्तान, पाकिस्तान और पाकिस्तान का वजीफा सुनने के बाद एक दिन पूछ लिया था कि पाकिस्तान है कहां। इस पर सब लड़कों ने उसे बहुत खींचा था। वह कुछ समझा था। कुछ नहीं समझा था, लेकिन उसे यह पता नहीं लग सका था कि पाकिस्तान कहां है।

गश्ती लौंडे सैफू को मजाक ही मजाक में संजीदगी से डराया करते थे "देखो सैफू, अगर तुम्हें हिंदू पा जाएंगे तो जानते हो क्या करेंगे? पहले तुम्हें नंगा कर देंगे।" लड़के जानते थे कि सैफू अधपागल होने के बावजूद नंगे होने को बहुत बुरी और खराब चीज समझता है "उसके बाद हिंदू तुम्हारे तेल मलेंगे।"

"क्यों, तेल क्यों मलेंगे?"

"ताकि जब तुम्हें बेंत से मारें तो तुम्हारी खाल निकल जाए। उसके बाद जलती सलाखों से तुम्हें दागेंगे..."

"नहीं।" उसे विश्वास नहीं हुआ।

रात में लड़के उसे जो डरावने और हिंसक किस्से सुनाया करते थे उनसे वह बहुत ज्यादा डर गया था। कभी-कभी मुझसे उल्टी-सीधी बातें किया करता था। मैं झुंझलाता था और उसे चुप का देता था, लेकिन उसकी जिज्ञासाएं खत्म नहीं हो पाती थीं। एक दिन पूछने लगा "बड़े भाई, पाकिस्तान में भी मिट्टी होती है क्या?"

"क्यों, वहां मिट्टी क्यों न होगी।"

"सड़क ही सड़क नहीं है... वहां टेरीलीन मिलता है... वहां सस्ता है..."

"देखो ये सब बातें मनगढ़ंत हैं... तुम अल्ताफ वगैरा की बातों पर कान न दिया करो।" मैंने उसे समझाया।

"बड़े भाई, क्या हिंदू आंखें निकाल लेते हैं..."

"बकवास है... ये तुमसे किसने कहा?..."

"अच्छन ने।"

"गलत है।"

"तो खाल भी नहीं खींचते?"

"ओफोह... ये तुमने क्या लगा रखी है..."

वह चुप हो गया लेकिन उसकी आंखों में सैकड़ों सवाल थे। मैं बाहर चला गया। वह सफिया से इसी तरह की बातें करने लगा।

कर्फ्यू लंबा होता चला गया। रात को गश्त जारी रही। हमारे घर से सैफू ही जाता

रहा। कुछ दिन बाद एक दिन अचानक सोते में सैफू चीखने लगा था। हम सब घबरा गए लेकिन ये समझने में देर नहीं लगी कि ये सब उसे डराए जाने की वजह से है। अब्बाजान को लड़कों पर बहुत गुस्सा आया था और उन्होंने मोहल्ले के एक-दो बुजुर्गनुमा लोगों से कहा भी, लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ। लड़के और वो भी मोहल्ले के लड़के किसी मनोरंजन से क्यों कर हाथ धो लेते?

बात कहां से कहां तक पहुंच चुकी है इसका अंदाजा मुझे उस वक्त तक न था जब तक एक दिन सैफू ने बड़ी गंभीरता से मुझसे पूछा ''बड़े भाई, मैं हिंदू हो जाऊं?''

सवाल सुनकर मैं सन्नाटे में आ गया। लेकिन जल्दी ही समझ गया कि यह रात में डरावने किस्से सुनाए जाने का नतीजा है। मुझे गुस्सा आ गया। फिर सोचा, पागल पर गुस्सा करने से अच्छा है गुस्सा पी जाऊं और उसे समझाने की कोशिश करूं।

मैंने कहा ''क्यों, तुम हिंदू क्यों होना चाहते हो?''

''बच जाऊंगा।'' सैफू बोला।

''इसका मतलब है मैं न बच पाऊंगा।'' मैंने कहा।

''तो आप भी हो जाइए।'' वह बोला।

''और तुम्हारे ताया अब्बा।'' मैंने अपने वालिद और उसके चर्चा की बात की।

''नहीं... उन्हें...'' वह कुछ सोचने लगा। अब्बाजान की सफेद और लंबी दाढ़ी में वह कहीं फंस गया होगा।

''देखो ये सब लड़कों की खुराफात है जो तुम्हें बहकाते हैं। ये जो तुम्हें बताते हैं सब झूठ है। अरे, महेश को नहीं जानते?''

''वो जो स्कूटर पर आते हैं...'' वह खुश हो गया।

''हां-हां, वही।''

''वो हिंदू हैं?''

''हां हिंदू हैं।।'' मैंने कहा और उसके चेहरे पर पहले तो निराश की हल्की-सी परछाईं उभरी फिर वह खामोश हो गया।

''ये सब गुंडे-बदमाशों के काम हैं... न हिंदू लड़ते हैं और न मुसलमान... गुंडे लड़ते हैं। समझे?''

दंगा शैतान की आंत की तरह खिंचता चला गया और मोहल्ले में लोग तंग आने लगे यार, शहर में दंगा करने वाले हिंदू और मुसलमान बदमाशों को मिला भी लिया जाए तो कितने होंगे। ज्यादा से ज्यादा एक हजार चलो दो हजार मान लो तो भाई दो हजार आदमी लाखों लोगों की जिंदगी को जहन्नुम बनाए हैं और हम लोग घरों में दुबके बैठे हैं। ये तो वही हुआ कि दस हजार अंग्रेज करोड़ों हिंदुस्तानियों पर हुकूमत किया करते थे और सारा निजाम उनके तहत चलता रहता था। और फिर हर दंगों से फायदा किसको है? फायदा? अजी हाजी

अब्दुल करीम को फायदा है जो चुंगी का इलेक्शन लड़ेगा और उसे मुसलमान वोट मिलें। पंडित जोगेश्वर को है जिन्हें हिंदुओं के वोट मिलेंगे, अबे तो हम क्या हैं?तुम वोटर हो हिंदू वोटर, मुसलमान वोटर, हरिजन वोटर, कायस्थ वोटर, सुन्नी वोटर, शिआ वोटर यही सब होता रहेगा इस देश में? हां, क्यों नहीं? जहां लोग जाहिल हैं, जहां किराए के हत्यारे मिल जाते हैं, जहां पॉलीटीशियन अपनी गद्दियों के लिए दंगे कराते हैं वहां और क्या हो सकता है? वरना क्या हम लोगों को पढ़ा नहीं सकते? समझा नहीं सकते? हा-हा-हा-हा, तुम कौन होते हो पढ़ाने वाले सरकार पढ़ाएगीअगर चाहेगी तो सरकार न चाहे तो इस देश में कुछ नहीं हो सकता? हां... अंग्रेजों ने हमें नहीं सिखाया है... हम इसके आदी हैं... चलो मन लो इस देश के सारे मुसलमान हिंदू हो जाएं? लाहौलविलाकुव्वत ये क्या कह रहे हो। अच्छा मान लो इस देश के सारे हिंदू मुसलमान हो जाएं? सुभान अल्लाह... वाह वाह, क्या बात कही है... तो क्या दंगे रुक जाएंगे? ये तो सोचने की बात है... पाकिस्तान में शिया सुन्नी एक-दूसरे की जान के दुश्मन हैं... तो क्या यार आदमी या कहो इंसान साला है ही ऐसा कि वो लड़ते ही रहना चाहता है? वैसे देखो तो जुम्मन और मैकू में बड़ी दोस्ती है। तो यार क्यों न हम मैकू और जुम्मन बन जाएं... वाह क्या बात कह दी मतलब... मतलब... मतलब...

मैं सुबह-सुबह रेडियो के कान उमेठ रहा था। सफिया झाड़ू दे रही थी कि राजा का छोटा भई अकरम भागता हुआ आया और फूलती हुई सांस को रोकने की नाकाम कोशिश करता हुआ बोला "सैफू को पीएसी वाले मार रहे हैं।"

"क्या? क्या कह रहे हो?"

"सैफू को पीएसी वाले मार रहे हैं।" वह ठहरकर बोला।

"क्यों मार रहे हैं? क्या बात है?"

"पता नहीं... नुक्कड़ पर..."

"वहीं जहां पीएसी की चौकी है?"

"हां, वहीं।"

"लेकिन क्यों..." मुझे मालूम था कि आठ बजे से दस बजे तक कर्फ्यू खुलने लगा है और सैफू को आठ बजे के करीब अम्मां ने दूध लेने भेजा था। सैफू जैसे पगले तक को मालूम था कि उसे जल्दी से जल्दी वापस आना है और अब तो दस बज गए थे।

"चलो, मैं चलता हूं।" रेडियो से आती बेढंगी आवाज की फिक्र किए बगैर मैं तेजी से बाहर निकला। पागल को क्यों मार रहे हैं पीएसी वाले, उसने कौन-सा ऐसा जुर्म किया है? वह कर ही क्या सकता है? खुद ही इतना खौफजदा रहता है, उसे मारने की क्या जरूरत है... फिर क्या वजह हो सकती है? पैसा? अरे उसे तो अम्मां ने दो रुपए दिए थे। दो रुपए के लिए पीएसी वाले उसे क्यों मारेंगे?

नुक्कड़ पर मुख्य सड़क के बराबर कोठों पर मोहल्ले के कुछ लोग जमा थे। सामने

सैफू पीएसी वालों के सामने खड़ा था। उसके सामने पीएसी के जवान थे। सैफू जोर-जोर से चीख रहा था "मुझे तुम लोगों ने क्यों मारा... मैं हिंदू हूं... हिंदू हूं..."

मैं आगे बढ़ा। मुझे देखने के बाद भ सैफू रुका नहीं। वह कहता रहा "हां... हां, मैं हिंदू हूं..." वह डगमगा रहा था। उसके होठों के कोने से खून की एक बूंद निकलकर ठोड़ी पर ठहर गई थी।

"तुमने मुझे मारा कैसे... मैं हिंदू हूं..."

"सैफू... ये क्या हो रहा है... घर चलो।"

"मैं... मैं हिंदू हूं।"

मुझे बड़ी हैरत हुई... अरे क्या ये वही सैफू है जो था... इसकी तो काया पलट गई है। ये इसे हो क्या गया।

"सैफू, होश में आओ।" मैंने उसे जोर से डांटा।

मोहल्ले के दूसरे लोग पता नहीं किस पर अंदर ही अंदर दूर से हंस रहे थे। मुझे गुस्सा आया। साले ये नहीं समझते कि वह पागल है।

"ये आपका कौन है?" एक पीएसी वाले ने मुझसे पूछा।

"मेरा भाई है... थोड़ी मेंटल प्रॉब्लम है इसे।"

"तो इसे घर ले जाओ।" एक सिपाही बोला।

"हमें पागल बना दिया।" दूसरे ने कहा।

"चलो... सैफू घर चलो। कर्फ्यू लग गया है... कर्फ्यू..."

"नहीं जाऊंगा... मैं हिंदू हूं... हिंदू... मुझे... मुझे..."

वह फूट-फूटकर रोने लगा, "मारा-मुझे मारा... मुझे मारा... मैं हिंदू हूं... मैं..." सैफू धड़ाम-से जमीन पर गिरा... शायद बेहोश हो गया था...

अब उसे उठाकर ले जाना आसान था।

❑❑❑

शीशों का मसीहा कोई नहीं

भारत हेयर कटिंग सैलून ऐसा न था। पांच साल का अर्सा इतना भी नहीं होता कि आसमान जमीन पर आ जाए और जमीन आसमान को छू ले। दबदबा हुआ करता था भारत हेयर कटिंग सैलून का और वैसा ही दबदबा था मामू का जो खड़खड़ाता सफेद कुर्त्ता-पाजामा पहने, देवानंद की स्टाइल में अपने बाल सजाए, चमेली का इत्रा लगाए, मुंह में जर्दे का पान दाबे। रेडियो के गाने पर धीरे-धीरे सिर हिलाते बाल काटा करते या शेव किया करते थे। शहर में मशहूर था कि मामू शेव इतना प्यार से करते हैं, उने हाथ इतना सधे हुए हैं, अंदाज इतना प्यारा है, तरीका इतने साफ-सुथरा है कि शेव बनवाने वाला शेव बनवाते-बनवाते सो जाता है। मामू ने अपने काम को कलाकारी के दर्जे तक पहुंचा दिया था। बम्बई से उनके लाख बुलावे आए, पैसों की लालच दी गई। देवानंद से मिलवाने के वायदे किए गए लेकिन मामू फतेहगढ़ जो पकड़ कर बैठे तो बैठे ही रहे।

पांच साल बाद घर यानी फतेहगढ़ आया तो मामू के भारत हेयर कटिंग सैलून को देख कर भौंचक्का रह गया क्योंकि वहां खानबहादुर आइना भी नहीं था...वो तो दुकान की जान हुआ करता था। बल्जियम में बना यह आइना खान बहादुर सुल्तान अहमद खां का था। खां साहब पाकिस्तान बनने के पांच-साल बाद हिजरत कर गए थे। उनके जाते ही नौकरों के सामान पार करना शुरु कर दिया था कस्टोडियन वालों के कब्जे में खानबहादुर आइना ही आया बल्कि ऐसी कोठी आई जिसमें खिड़कियां और दरवाजे तक न थे।

खानबहादुर सुल्तान अहमद खां के ड्राइग रुम में लगा बेल्जियम का आइना तीन पीढ़ियां पहले कलकत्ता से किसी अंग्रज सौदागर से खरीदा गया था। आइना क्या था कमाल था। कहते हैं अंग्रेज कलस्तर जब तबादला होकर फतेहगढ़ आते थे तो खानबहादुर से आइना देखने की फरमाइश करते थे। आइना पीतल के फ्रेम मे जड़ा हुआ था। जो कि बहुत बड़ा न था लेकिन उसमें शक्ल ऐसी दिखाई देती थी जैसी देखने वाले न पहले कभी किसी आइने में न देखी होती थी।

मामू को जब ये पता चला था कि खानबहादुर के नौकर आइना रातों-रात पार कर ले गए तो उन्होंने आइना हासिल करने के लिए जी-जान लगा दी थी। पता नहीं कितने पापड़ बेल कर, कहां-कहां थिगली लगा कर, न जाने कितने जुगाड़ करके दासियों को पटा-पटाकर, मिन्नतें खुशामदें करके मामू ने पांच सौ रुपये में आइना खरीद लिया था। रुपये

उन्होंने लाला कस्तुरीमल से ब्याज पर लिए थे। ब्याज और कर्ज चुकाने के अलावा लालाजी ने एक शर्त ये भी रखी कि मामू ताजिन्दगी लालाजी का काम मुफ्त करेंगे।

लालाजी का मूलधन और ब्याज चुकाने के बाद भी मामू लाला के उपकार को सदा मानते रहे। मामू की दुकान में आइने का नामकरण हुआ था खानबहादुर आइना। लैला–मजनू और शीरीं फरहाद जैसा इश्क हो गया था मामू को खानबहादुर आइने से। दुकान के किसी कारीगर की हिम्मत न थी इसे छूने की। मामू ही उसे रोज साफ करते थे। हते में एक बार चूने के पानी से रगड़ते थे। सूखे कपड़े से पोंछते थे मामू ये सब ऐसे किया करते थे जैसे माएं अपने बच्चों की मालिश करती हैं। मामू की दुकान का ही नहीं, वह शहर की शान बन गया था। लोगों का तांता लगा रहता था। मामू को सिर उठाने की फुर्सत न मिलती थी। चार दूसरे कारीगर भी काम में जुटे रहते थे। ग्यारह बजे रात तक मामू की दुकान खुली रहती थी। रस्तोगियाने के सेठ दुकानें बन्द करके रात में ही बाल कटवाने आते थे और खुश होकर दुअन्नी–चवन्नी छोड़ भी दिया करते थे। मामू कहा करते थे कि खानबहादुर आइना उनके शुभ साबित हुआ है। उन्होंने सैयदबाड़े में एक छोटा–सा घर भी बनवा लिया था। उम्र और वक्त गुजरने के साथ–साथ मामू में सैकड़ों तब्दीलियां आई थीं। देवानन्द स्टाइल के बालों पर मेंहदी का रंग चढ़ गया था आंखों पर चश्मा लग रहा था, एक छोटी–सी दाढ़ी भी उग आई थी लेकिन वो शहर भर के मामू थे। मामू का नाम शायद मामू को भी न पता था। हिन्दू–मुस्लिम सभी उन्हें मामू कहते थे।

मामू की दुकान में खानबहादुर आइना न देखकर भौचक्का रह गया। मामू किसी के बाल काट रहे थे। मुझे देख कर बोले कब–आए?

''आज ही आया।'' जी चाहा कि सबसे पहले यही पूछूं कि मामू का वो खानबहादुर आइना कहां चला गया? लेकिन इतनी बात एकदम पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी।

''बहुत साल बाद आए?'' मामू ने पूछा।

हां, मैं बहुत साल बाद गया था। इसका एहसास और अपराधबोध मेरे अन्दर था। एक ऐसा शहर जहां आपकी जड़ें हों, वहां आपका ऐसा घर हो जिसे अब भी घर मानते हों और महानगर के फ्लैट को अपना होने के बावजूद अब भी अपना घर न स्वीकार कर सके हों। जहां लोग आपको सर्टीफिकेट में लिखे नाम से नहीं घरेलू नाम से जानते हो, जहां लंगोटये यार हों, जहां की हवा में आपको इतना अपनापन लगता हो कि आप वहीं पसन्द करते हों...उस शहर या कस्बे से आपके सम्बन्ध टूट रहे हों तो कैसा लगेगा? मुझे मामू के सवाल पर शर्म आई...हां मामू मैं सारी दुनिया घूमता रहा...सारे देश में विचरता रहा और मुझे यहां आने का समय नहीं मिला जहां से मुझे जाना ही नहीं चाहिए था।

''वहां का क्या हाल है?''

''सब ठीक है।'' मामू बेजारी से बोले।

''आप सब ठीक रहे?''मुझे मालूम था कि तीन साल पहले इस शहर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था। दंगे की खबरें अखबारों में पढ़ी थीं। दुकानें लूटी और जलायी गई थीं। चार-पांच लोग मारे भी गये थे।

''हां ठीक रहे?'' मामू बोले और मैं समझ नहीं पाया। मामू की दुकान शहर की इस आबादी में है जिसे हिन्दू आबादी कहा जा सकता है।

मामू जिस आदमी के बाल काट रहे थे वह गांव का लग रहा था। ध्यान से देखने पर उसकी चोटी दिखाई पड़ी जिसे मामू बड़ी एतिहात से उंगलियों के बीच दबाये बाल काट रहे थे। अच्छा तो मामू के कुछ न बोलने की ये वजह है। मैं भी चुप हो गया। मामू जल्दी-जल्दी बाल काटने लगे। चोटी उनकी उंगलियों के बीच एहतिहात से दबी रही। मैंने दुकान का फिर से जायजा लिया। प्लास्टिक के फूलों पर गर्द थी। झालरें टूट गई थीं। कुर्सियों के हत्थों पर से रक्सीन निकल गई थी और काली-काली कई दिखाई देती थीं।

बाल कटाने वाला आदमी चला गया तो मामू मेरी तरफ मुड़े और इत्मीनान से बैठ गए। बीड़ी का बण्डल निकाला। दो बीड़ियां जला रहे थे कि मैंने कहा, ''मैंने सिगरेट-बीड़ी छोड़ दी मामू।''

''अच्छा...चलो अच्छा किया।''उन्होंने एक बीड़ी बंडल में डाल ली।

''अब बताओ क्या हाल हैं?''

''दुकान की हालत देख रहे हो?''

''हां लेकिन क्यों?''

''वो लोग अब इधर नहीं आते।'' उन्होंने लम्बा दम खींचने के बाद कहा।

''वो लोग''...? मैंने पूछना चाहा कि वो लोग कौन हैं, लेकिन मामू ने पूछने का मौका ही न दिया।

''उन्होंने अपनी अलग सब्जी मंडी बना ली है...इधर हम लोगों ने अपनी अलग अनाज मंडी बना ली है।

अब मैं समझा कि ''वो'' कौन हैं। फतेहगढ़ में सब्जी मंडी कुंजड़े लगाया करते थे और अनाज मंड़ी बनियों की थी।

''अब ये हमारी दुकान 'उनके' इलाके में पड़ जाती है...हमारे तो यही ग्राहक थे...अब नहीं आते...

''लेकिन अभी जो था?''

''गांव के आदमी भूले-भटके चले आते हैं।''

मैं चुपचाप सुनता रहा, बोलने या कहने के लिए कुछ न था।

''मामू, क्या फसाद में तुम्हारी दुकान भी लूटी गई थी?''

‘‘हां लूटी थी...जलाई भी थी...इधर लौडों ने जो काम चौक में किया था वही उन्होंने यहां किया...देखो चूने के पीछे धुआंई दीवार नहीं दिखाई देती।’’

‘‘हां, है तो।’’

‘‘तुम्हे पता है जैसे अपने यहां काजी होते हैं, वैसे उन्होंने भी काजी बना लिया है।’’

‘‘क्या? काजी? उसे क्या कहते हैं?’’ मुझ पर हैरत का पहाड़ टूट पड़ा।

‘‘नगराचार कहते हैं।’’

‘‘ये है कौन आदमी?’’

‘‘कहीं बाहर से आया है।’’

‘‘कुछ देर बाद मैंने हिम्मत करके पूछा ‘‘मामू वो खानबहादुर आइना कहां है?’’

‘‘है, देखोगे?’’

‘‘हां दिखाओ।’’

मामू के घर के बरामदे में बंधी बकरी उन्हें देख कर मिमियाने लगी। मामू उनके सिर पर हाथ फेरते अन्दर आ गए। कमरे में एक चारपाई पर लिहाफ–गद्दे रखे थे। खुंटियों पर रस्सी, पोटलियां, तौलिया, लालटेन और तमाम अल्लम–गल्लम चीजें टंगी थीं। दीवारों पर तुगरे और पुराने कलैंडर लगे थे। मैं एक तुगरे को देख ही रहा था कि मेरे पीछे कमरे में शीशे टूटने की एक तेज आवाज आई। मैं पीछे मुड़ा तो देखा मामू हाथ में खाली बोरा लिए खड़े हैं और कमरे के बीचों–बीच शीशे के छोटे–छोटे टुकड़ों का ढेर लग गया है मामू के चेहरे पर कोई भाव नहीं था। मेरे अन्दर यह पूछने की हिम्मत नहीं थी कि क्या ये वही खानबहादुर आइना है? इसका ये हाल हुआ कैसे? शीशे के छोटे–छोटे टुकड़ों में सैकड़ों मामू मेरी तरफ देख रहे थे। न कोई शिकवा, न शिकायत, न आहत होने का भाव, न प्रतिशोध...उनकी आंखों में अगर कुछ था तो सिर्फ यह कि कुछ न था।

❑❑❑

तेरह सौ साल का बेबी कैमिल

'बर्ड आई व्यू' यानी चिड़िया की आंख से देखें तो चारों तरफ घनी आबादी है। तंग गलियां, और संकरे मकान पतले और गन्दे बाजार। बीचों-बीच मुहम्मद अली पोस्ट ग्रेजुएट कालेज ऑफ आर्ट्स एंड कामर्स है। कालिज की इमारतें फील्ड और लम्बे-चौड़े मैदान जहां अभी इमारतें बनती हैं। कालेज की इमारतों में 'इशरत बाग' के फ्लैट्स हैं जहां टीचर्स रहते हैं। पीछे एक नाला है और नाले के बाद 'मिनी पाकिस्तान' है यानी शहर की सौ फीसदी मुस्लिम आबादी । आजकल नहीं बल्कि पन्द्रह-बीस साल पहले यहां पाकिस्तान के जीतने और भारत के हारने की खुशी में मिठाई बंटा करती थी। आजकल आसोमा बिन लादेन के पोस्टर बिकते हैं। मस्जिदें जितनी ऊंची होती चली जा रही हैं उतनी ही लाउडस्पीकरों की आवाज में इजाफा हो रहा है। पांच मस्जिदों के लाउडस्पीकर पूरे इलाके को हिला कर रख देते हैं।

चिड़िया कुछ नीचे उतरे तो तंग कच्ची गलियों में बेढंगे मकान, बाजारें हैं जहां खाने के गन्दे होटल और गोश्त की दुकानों की भरमार है। कुछ इलाके 'पाश' हैं जहां कोठियां है, लम्बी कारें हैं और उतनी ही लम्बी दाढ़ियां हैं। यहां की मखलूक अपनी जिन्दगी जीती है। ओसामा बिन लादेन 'पड़ोसी' है और 'पड़ोसी' दूर किसी मुल्क में रहते हैं।

एक तो पंडित दूसरे राज गोत्र का पंडित। तीसरे और सोने पर सुहागा यह कि पंडितों के गांव का पंडित और फिर पढ़ा-लिखा। इतिहास में एम.ए.।

''ललुआ समझ लिए हो? मुसलमानन के कालिज में नौकरी करिहो?''

ओम प्रकाश शर्मा ने पूरे टोले, रिश्तेदारों, गांव वालों को समझाया था कि मुहम्मद अली पोस्ट ग्रेजुएट कालिज में नौकरी करने का यह मतलब नहीं है कि वे पाकिस्तान या मुसलमान हो जाएंगे। बीस साल बाद सबको उनकी बात पर यकीन हो गया है।

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ने जैसे गाड़ी मेन रोड से हकीम रोड पर मोड़ी, एक गंध ने उनका स्वागत किया। जैसे-जैसे गाड़ी आबादी में आती गई ये गन्ध बढ़ती गई। उनके बराबर बैठी सुषमा ने नाक पर रुमाल रख लिया। लिली और कबीर पिछली सीट पर सो रहे थे। रात के दस बजे चुका थे। गाड़ी 'इशरत बाग' के अन्दर आई तो बदबू का एक तेज झोंका आया। अब ये गन्ध तीन-चार दिन रहेगी, सुषमा ने कहा। डॉ शर्मा कुछ नहीं बोले। यह तो

हर साल का किस्सा है। इस मौके पर साल में एक बार वे सपरिवार गांव चले जाते हैं। दो दिन तक रहते हैं, लौटते हैं तो यह गन्ध स्वागत करती है और फिर धीरे–धीरे सब सामान्य हो जाता है।

''पापा 'बेबी कैमिल' कहां है?''

''सो जाओ...अभी रात है।''

''नहीं, मैं देखूंगी।'' वह जिद करने लगी।

''अरे वह भी तो सो रहा होगा।''

''मैं अभी देखूंगी...अभी, पापा अभी।''

''जिद मत करो, सो जाओ।''

''पापा, आइ वांट टू सी बेबी कैमिल'' लिली अंग्रेजी में बोली क्योंकि वह जानती है अंग्रेजी में मांगी गई चीज आसानी से मिल जाती है।

सुषमा ने उसे जबरदस्ती लिटा दिया और थपकने लगी।

''आप क्या खाएंगे...फ्रिज में पूरा खाना रखा है।''

''अब इस दुर्गंध में क्या खायेंगे।'' वे चिढ़कर बोले ''दरवाजा बन्द करो। बेडरूम का ऐ.सी चला दो और वहीं बैठते हैं। टी.वी. ट्राली भी मैं उधर ले आता हूँ।''

नहा–धोकर सफेद कुर्ता–पाजामा पहनकर जब डॉ. शर्मा ठंडे कमरे में बिस्तर पर लेटकर अपनी मनपसन्द टी.वी. प्रोग्राम देखने लगे तब कहीं जाकर उनकी जान में आई। सुषमा भी लेट गई।

''क्यों जी, कल तो अब ये लोग नहीं करेंगे ना?''

''अरे रोज–रोज करते है। क्या? और कोई काम नहीं है? कल से कालिज खुल रहा है, पढ़ाई शुरू हो जाएगी।'' लिली सोते–सोते फिर कुनमुनाई और बड़बड़ाई– ''बेबी कैमिल...''

सुषमा ने उसे प्यार से थपक दिया।

''तुम ने उसे ऊंटों के पास जाने ही क्यों दिया?''

''मैं यहां थी कहां...टेलर के पास गई थी, बिमला सफाई कर रही थी। उसी समय ऊंट आए थे। ऊंट क्या, ऊंटों के दो बच्चे थे। पूरी कालोनी के बच्चे उनके पीछे पागल हो रहे थे। उन्हीं के साथ लिली और कबीर भी गए थे। उसके बाद तो लिली ने और बच्चों के साथ ऊट के बच्चो को बबूल की पत्तिया, चने और जाने क्या–क्या खिलाया था। मैं जब लौटकर आई तो सब हो चुका था। वह इतनी खुश थी कि ड्राइंग की कापी में उसने बेबी कैमिल का स्केट भी बनाया था। कह रही थी अपनी टीचर को दिखाऊंगी।''

''ओहो,''डॉ. शर्मा ठंडी सांस लेकर बोले।

आ तो गए हैं मुसलमानों के कालिज में, पर देखें क्या होता है? नाम तो कोई लेता

नहीं, सब पंडित जी या छोटे पंडित जी कहते हैं। बड़े पंडित त्रिपाठी जी हैं जो हिन्दी पढ़ाते हैं। भूगोल में अस्थाना जी हैं। इतिहास में रवीन्द्र वर्मा हैं।

आ तो गए हैं मुसलमानों के कालिज में पर देखें होता क्या है? नौकरी बड़ी चीज है। जनेऊ कम बड़ी चीज नहीं है। नाम तो है ही। पर यह लगना नहीं चाहिए कि कट्टर हिन्दू हैं। हैं भी नहीं। वैसे....आरएसएस को कभी पसन्द नहीं किया शर्मा जी ने, पर जनेऊ का क्या करें? साजिद के साथ एक कमरे में रहते हैं। एक चारपाई, मेज–कुर्सी, दो अल्मारियां, टीन के दो बड़े बक्से हैं पर जनेऊ रखने की जगह नहीं है। आखिरकार उतार कर एक डिब्बी में बन्द की। डिब्बी पेंट की जेब में रख लेते हैं जब गांव की बस पकड़ते हैं। यह बात है बीस साल पुरानी। जैसे–जैसे नौकरी में आगे बढ़ते गए बैंक–बैलंस बढ़ता गया। गांव में जमीन खरीदते गए, पक्का मकान बनाते गए जैसे डिब्बी छोटी होती चली गई। अन्तिम बार आठ साल पहले विवाह के अवसर पर उसकी जरूरत पड़ी थी।

बीस साल में बीसियों पागल देखे, कुछ पागल उन्हें मांस खिलाने पर कमर कसे हुए थे। उन्हें लगता था पंडित ओम प्रकाश शर्मा ने मांस खा लिया तो धरम भ्रष्ट हो जाएगा और वह मुसलमान हो जाएगा। मुसलमान न भी हुआ तो कम से कम हिन्दू तो न रहेगा। कुछ पागल डॉ शर्मा को गुरु गोलवलकर का प्रतिनिधि मानते थे। कुछ यह मानते थे कि बाबरी मस्जिद अकेले डॉ शर्मा ने ही ढहाई हैं। कुछ को यह विश्वास था कि दंगों में मारे गए बेगुनाह मुसलमानों का खून डॉ शर्मा की गर्दन पर है। विचित्र प्राणी हैं संसार में।

साजिद कहता है यार, ये सब पागल हैं, पागल।

डॉ शुजाअत कहते हैं कालिज की चौहद्दी से बाहर निकलने में इनकी नानी मरती हैं। तुम्हीं को मुसलमान बनाने के लिए दंड पेलते रहते हैं।

अतिया अजीज कहती हैं ये बीमार लोग हैं। शर्मा इनकी बातों का बुरा न माना करो।

ताहिर हुसैन हैं यार ये अपने दिल की भड़ास कहां निकालें। दूसरे हिन्दू टीचर कैंपस में नहीं रहते। तुम ही इन्हें मिल जाते हो।

डॉ. शुजाअत कहते हैं बुरा न माना करो यार...इनमें से कोई सीरियस होने लगे तो बताना, ठीक कर दूंगा। मैं भी 'प्रैक्टिसिंग' मुसलमान हूं।

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा ने लैम्प बुझा दिया। रात का बारह बज चुके थे। बीस साल हो गए हैं इस कालिज में। अब सब सामान्य है। लेकिन पागलों की तादाद बढ़ रही है, पर उन्हें क्या? उन्हें तो हर महीने वेतन मिल जाता है। अपना काम करते हैं। हिसाब–किताब ठीक–ठाक है।

मांस उन्होंने एक–दो बार चखा है। अच्छा नहीं लगा। मांस न खाने के पीछे धार्मिक नहीं रुचि कारण है। बाईस साल तक दांतों और जबड़ों ने चबा–चबाकर मांस को

पीसना नहीं सीखा है, उसका रसास्वादन नहीं किया है तो अब क्या करेंगे? और फिर कुसूर उनका नहीं है, पंडितों का गांव, पंडितों को कालिज, पंडितों के संस्कार। उन्होंने यहां गोश्त की दुकानें पहली बार देखी थीं तो बस लगा था जो कुछ पेट में है...सब बाहर आ जाएगा।

डॉ ओम प्रकाश शर्मा नए-नए लगे थे। पहला साल था। बकरीद की एक दिन छुट्टी पड़ रही थी। सोचा था अब एक दिन के लिए गांव क्या जाएं। कालोनी में ही रह गए थे। उस दिन उन्होंने जिब्ह होते सौ बकरों की आवाजें सुनी थीं। उन्हें लगा था कि आदमी का भी गला काटा जाए तो इसी तरह की आवाजें निकलेंगीं यानी सौ इंसानों के गले की आवाजें एक साथ उनके कानों से चिपक गई थीं। फिर हर फ्लैट के सामने कम से कम दो लाल, खाल उतरी हुई बकरे लटके थे। गलीज कपड़े पहने कसाई पेट फाड़ता तो अंताडियां भड़ाक से बाहर आ जातीं। शर्मा को लगा ये सौ बकरे सिर्फ उनसे कुछ कह रहे हैं। क्योंकि और कोई उनकी बात नहीं सुन रहा है। अचानक ही उनके मुंह से 'राम-राम' निकल गया था। फिर जल्दी से वे संचेत हो गए थे। छोटे पंडित को पागल गोश्त खाने, कबाब खाने, बिरयानी खाने की दावत देकर उनका मजाक उड़ा रहे थे जबकि सबको मालूम था कि शर्मा गोश्त नहीं खाते। इस बकरीद के बाद शर्मा को कई महीने सपने में लटकते बकरे दिखाई देते रहे। लगता वे स्वयं लटक रहे हैं और सीख रहे हैं। कभी लगता हाथ खून से लथपथ हैं और गर्दन कटी हुई है। सपनों को तो कोई नहीं रोक सकता है।

लेकिन बकरीद में घर तो जाया ही जा सकता है। तब से शर्मा जी ने तय किया कि वे किसी भी हालत में, हां किसी भी हालत में...

सोते-सोते लिली फिर कुनमुनाई--बेबी कैमिल! और शर्मा के अपने सपने फिर ताजा हो गए।

उन्होंने अपने हाथ से लिली को थपकना चाहा पर लगा कि उनके हाथों में लाल खून...उन्हें अपने ऊपर गुस्सा आ गया और लिली को थपकाने लगे।

अब इस कहानी के एक अहम किरदार का परिचय कराना आवश्यक हो गया है। वैसे ख्वाजा अब्दुल मजीद 'हक्कानी' कहानी के नहीं, उपन्यास के पात्रा हैं लेकिन मजबूरी यही है कि वे इस कहानी में आ गए हैं। इसलिए थोड़े लिखे को अधिक जानिए और लेखक को माफ कीजिए।

ख्वाजा अब्दुल मजीद 'हक्कानी' कामर्स पढ़ाते हैं लेकिन अपने आप में बहुत बड़ी संस्था हैं। उनका कद साढ़े छ: फिट है। वजन करीब दो सौ किलो है जिसमें सिर्फ उनकी तोंद का वजन ही करीब साठ-सत्तर किलो होगा। उम्र पैतालीस से पचास के बीच है। 'अंजुमने अकदे बेवगाने मुस्लमीन' के अध्यक्ष हैं। संस्था का अनुवाद कुछ इस तरह होगा- मुसलमान विधवा औरतों का पुन: निकाह कराने वाला संगठन। 'हक' नाम की पत्रिका के संपादक हैं। 'इस दुनिया' नाम का एक संगठन चलाते हैं जो इस्लाम का प्रचार करता है।

सभी तरह के धार्मिक आयोजन बड़े जोर-शोर से करते हैं लेकिन धार्मिक लोग उन्हें नापसन्द करते हैं। वजहें कई हो सकती हैं। उन्हें पसन्द न करने वालों में 'इशरत बाग' टीचर्स कालोनी को सभी महिलाएं शामिल हैं हक्कानी का चेहरा गोल है, सिर पर उस्तरा फिरवाए रहते हैं।

दादी के बालों को उनसे कोई शिकवा-शिकायत नहीं है क्योंकि हक्कानी ने अपनी दाढ़ी के साथ वही व्यवहार किया है जो 'चिपको आन्दोलन' वाले पेड़ों के साथ करते हैं। मूंछें मुड़वाते रहते हैं। काला चश्मा लगाते हैं। लम्बा सफेद कुर्ता और ऊंचा पजामा पहनते हैं। कन्धे पर एक चौखाने का अरबी रुमाल डाले रहते हैं। ईद-बकरीद या विशेष धार्मिक अवसरों पर अरबी लिबास पहन लेते हैं घर से जब भी बाहर निकलते हैं, हाथ से तस्बीह रहती है। कहा जाता है कई बार हज कर चुके हैं। कोई कहता है बिहार के रहने वाले हैं। लेकिन बिहार के रहने वाले कहते हैं कि वे बिहार के नहीं हैं। कोई कहता है आजमगढ़ से हैं। पर आजमगढ़ वाले पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि हक्कानी वहां के नहीं हैं। मतलब यह ठीक पता नहीं चल पाया है कि कहां के रहने वाले हैं या कहीं के लोग यह मान कर नहीं देते कि 'हक्कानी' उनके प्रांत या जिले के हैं। हक्कानी अपने विश्व इस्लामी बिरादरी का अंग मानते हैं लेकिन उन्हें विश्व की पर्याप्त जानकारी नहीं है।

'हक्कानी' सपरिवार 'इशरत बाग' स्टाफ क्वार्टर में रहते हैं और अचानक कई-कई हफ्तों के लिए गायब हो जाते हैं बताते हैं कि 'हक' की तलकीन के लिए गया था। लेकिन इस्लाम प्रचार में लगे तब्लीगी जमात के लोग यह साफ तौर पर कहते हैं कि 'हक्कानी' का उनसे कोई ताल्लुक नहीं है। पांच-छः साल पहले 'हक्कानी' अपने दौरे से लौटे तो उनके साथ उनके कद से आधे कद की एक बुर्कापोश लड़की थी। 'हक्कानी' ने लोगों को बताया कि उन्होंने दूसरा निकाह किया है। दोनों पत्नियां साथ रहने लगीं। कालोनी की औरतों ने 'हक्कानी' की दूसरी पत्नी से मिलने की कोशिश की तो 'हक्कानी' के हुक्म की वजह से ऐसा नहीं हो सका। फरिश्तों को छोड़कर औरतों या मर्दों के लिए 'हक्कानी' का घर बन्द था।

एक दिन पता चला कि 'हक्कानी' ने अपनी पहली पत्नी को मारपीट कर घर से निकाल दिया है। बच्चों को, जिनमें एक चौदह साल का लड़का और दो लड़कियां हैं, 'हक्कानी' ने रख लिया है। कालोनी की औरतों ने चन्दा करके 'हक्कानी' की पहली पत्नी को मायके भिजवा दिया। एक दिन यह पता चला कि 'हक्कानी' का लड़का दिल्ली भाग गया है और वहां रिक्शा चलाता है। लोगों ने इसके बारे में 'हक्कानी' से बात की तो 'हक्कानी' ने बड़े गर्व से कहा कि उनका लड़का रिक्शा चलाता है तो यह बहुत गौरवपूर्ण है। क्योंकि इस्लाम मेहनत करने को बड़ा ऊंचा दर्जा देता है।

दो-चार महीने बाद पता चला कि 'हक्कानी' ने अपनी ग्यारह साल की लड़की

की शादी किसी पचास साल के बूढ़े से कर दी है। इस पर डॉ. अतिया अजीज पुलिस को फोन करने जा रही थी। पर समझा-बुझाकर बड़ी मुश्किल से उन्हें रोका गया।

फिर ये खबर मिली कि 'हक्कानी' जब कालिज जाते हैं तो अपनी युवा पत्नी को 'किचन' में बन्द कर जाते हैं। 'किचन' में पत्नी को बन्द कर ताला लगाते हैं, फिर कमरों में ताले लगाते हैं। बाहरी दरवाजे पर ताला लगाते हैं और गेट पर ताला लगाते हैं। हुआ यह है कि एक दिन क्वार्ट्स में काम करने वाली किसी महरी को 'सर्विस लेन में' 'हक्कानी' के किचन से किसी लड़की के रोने की आवाज सुनाई दी। कालोनी की दूसरी औरतों को पता चला और यह बात सामने आई। 'हक्कानी' से पूछा गया कि ऐसा क्यों करते हैं तो उन्होंने कहा हजरत कलामे-पाक में साफ कहा गया है कि औरतें तुम्हारी खेतियां हैं। तो जनाब जिस तरह हम अपने खेत की देखभाल और रखवाली करते हैं उसी तरह मैं...''

इस घटना के बाद डॉ शुजाअत ने यह कहना शुरू कर दिया कि 'हक्कानी' ने इस्लाम का जितना शोषण किया है उतना शायद ही किसी ने किया हो।

साजिद को 'हक्कानी' फूटी आंख नहीं भाते। वह कहता है यार उसे तो देखते ही गुस्सा आने लगता है। अरे पाखंड करता है तो करे...इस्लाम को ढाल क्यों बनाता है।

'हक्कानी' जब अगले अज्ञातवास और उनके अनुसार धर्म प्रचार पर गए तो अपनी पत्नी को भी साथ ले गए। वापस लौटे तो उनके साथ बुर्के में लिपटी एक और दुबली पतली लड़की थी। उन्होंने गर्व से बताया कि यह उन्होंने तीसरा निकाह किया है। यह लड़की तो ठीक से हिन्दुस्तानी भी नहीं बोल पाती थी। वह तेलगू बोलती थी जो 'हक्कानी' और उनकी दूसरी पत्नी की समझ में नहीं आती थी। कुछ लोगों का यह भी ख्याल था कि 'हक्कानी' उसे खरीद लाये हैं। कुछ लोग खासतौर पर साजिद इस पर तुल गया था कि 'हक्कानी' को 'एक्सपोज' किया जाना चाहिए। सबसे पहले एफ.आई.आर.दर्ज करना चाहिए, इन्हें गिरफ्तार करना चाहिए और फिर इन्हें 'सस्पेंड' होना चाहिए। तब कहीं जाकर इसका दिमाग सही रास्ते पर आएगा। लेकिन ये सब झंझट के काम कौन करता। कालिज के चेयरमैन हाजी अब्दुल लतीफ भी 'हक्कानी' पर दांत पीस कर रह जाते थे। कुछ करते तो बात पता नहीं कहां तक पहुंचती और न जाने कितनी बदनामी होती।

लिली के उठने से पहले डॉ शर्मा और सुषमा चाय पीते हुए 'बेबी कैमिल' वाले मसले में उलझे थे।

जिद करेगी तो क्या करोगे।

अरे यार गाड़ी में बिठाकर कहीं ऊंट दिखा लाऊंगा।

मानेगी नहीं।

अरे तो मैं उन ऊंट के बच्चों को जिन्दा तो नहीं कर सकता जिन्हें 'हक्कानी' साहब ने जिब्ह करा दिया है।

पिछले साल भी उन्होंने दो ऊंट के बच्चे कटवाये थे।

सब नाराज थे इस बात पर...एक तो ऊंट का गोश्त कोई खाता नहीं...बेकार जाता है...दूसरे...।

घंटी बजी और साजिद अन्दर आ गया।

कहो, आ गए।

हां...तो कल फिर हुई ऊंट की कुर्बानी?

न पूछो यार...ये तो हद कर दी 'हक्कानी' ने।

पता नहीं उसे क्या मजा आता है।

मजा नहीं...दिखावा...छाती ठोंक कर कहता है, देखो मैं तुम सबसे सच्चा और पक्का मुसलमान हूं।

तुम लोग कुछ करो यार।

देखो अब की मामला सीरियस है...हाजी जी भी इस तरह की हरकतें पसन्द नहीं करते...कल कहीं जाकर अखबार-बखबार में छप गया तो बस लेने के देने पड़ जाएंगे।

'हक्कानी' के यहां से गोश्त आया होगा?

हां यार, ये भी एक परेशानी वाली बात है। कुर्बानी का गोश्त है। न कोई खा सकता है न फेंक सकता है।

खून का छोटा फव्वारा उठा। जो बच्चे पास बैठे थे वे पीछे हटने की कोशिश में गिरे। जो खड़े थे उन्होंने दो कदम पीछे रखे। तेज छुरी गर्दन पर चली। कुछ दूसरी आवाजों के साथ लिली की आवाज आई"मत काटो बेबी कैमिल को...मत काटो..."लेकिन यह आवाज चिड़िया की नजर में नहीं आई।

लिली ने देखा लाल खून के फव्वारे के बाद बेबी कैमिल की गर्दन की लाल नसें कटने लगीं ओर खून इधर-उधर बहने लगा। वह रोने लगी। कबीर उसे चुप कराने लगा। बेबी कैमिल का नरखटा कटा तो अजीब तरह की आवाज आई। लिली चीख पड़ी और जोर-जोर से रोने लगी। खर्र-खर्र की आवाज बन्द हो गई और कटा हुआ नरखटा साफ दिखाई देने लगा। बेबी कैमिल की आंखें अब भी खुली थीं। उसके मुंह को रस्सियों से बांध दिया गया था। दो लोग उस पर बैठे थे। बेबी कैमिल के चारों पैर भी रस्सियों से बंधे थे। नरखटा कटने के बाद भी बेबी कैमिल पैरों को चला रहा था जिससे जमीन पर निशान पड़ रहे थे। धीरे-धीरे पैरों का चलना हल्का पड़ता गया। लिली ने बेबी कैमिल की आंखों में देखा...आंखें अब तक बंद नहीं थीं। वे सीधे लिली को देख रही थीं। लिली रो रही थी। नरखटा कटने के बाद छुरी किसी हड्डी से टकराई और खरखराहट की आवाज आई। एक बार बेबी कैमिल का शरीर हल्का-सा हिला फिर आंखें आधी के करीब बंद हो गई। खून निकल कर इधर-उधर और कसाई के पैरों पर फैल गया। उसके कपड़ों पर कुछ छींटे भी

पड़े। कसाई ने अपनी छुरी हटा ली। उसने दूसरी बड़ी और मोटी छुरी लेकर बेबी कैमिल की गर्दन की हड्डी पर वार किए। लिली की फिर आखें निकल गई। कसाई ने कहा, किसकी लड़की है। डर गई है। इसे घर ले जाओं लेकिन उसी वक्त हड्डियों के कुछ टुकड़े हवा में उछले और बेबी कैमिल का सिर धड़ से अलग हो गया। लिली गिर पड़ी। अय्यूब साहब ने कबीर को डांटा तुमसे कब से कहा जा रहा है कि बहन को घर ले जाओ...क्यों नहीं ले जाते? कबीर ने लिली को सहारा दिया। लिली ने बेबी कैमिल के कटे हुए सिर को देखा जो कसाई ने अपनी पीठ के पीछे डाल दिया था। लिली ने कबीर संभालता हुआ घर लाया।

क्या हुआ है इसे?

मम्मी...वो...बेबी कैमिल को काट रहे थे...वही देखते-देखते...

बेड पर लेट कर लिली बेहोश सी हो गई थी। या शायद गहरी नींद में चली गई पर उसके होंठ फड़क रहे थे। सांस तेज चल रही थी, चेहरे पर डर का भाव स्थाई हो गया था। बार-बार शरीर में सिहरन-सी हो रही थी। सुषमा को यह समझते देर नहीं लगी कि लिली बहुत डर गई है।

डॉ. शर्मा साजिद के घर बैठे गप्पें मार रहे थे। उन्हें बुलाने कबीर आया तो साजिद भी उसके साथ आ गए। लिली की हालत हकीकत में तशवीशनाक थी। वह पत्ते की तरह कांप रही थी।

यार शर्मा जी, मैं गाड़ी लाता हूं...फौरन इसे लेकर चलो अस्पताल।

ठीक है भाई साहब...ठीक कह रहे हैं। सुषमा ने कहा। डॉ. शर्मा के चेहरे पर एक क्षण के लिए 'अरे कुछ नहीं अभी ठीक हो जाएगी' के भाव आए और गायब हो गए। साजिद गाड़ी लेने चला गया।

अस्पताल पहुंचते-पहुंचते लिली तपने लगी। बुखार ऐसा था कि एक बार डाक्टर भी घबरा गए। दवाएं असर नहीं कर रही हैं। 'इन्टेन्सिव केयर यूनिट' में भरती करा दिया। साजिद ने डॉ. शुजाअत को फोन कर दिया और कुछ ही देर में डॉ अतिया अजीज, ताहिर हुसैन और डॉ. शुजाअत अस्पताल पहुंच गए।

ये हुआ कैसे? सुबह तक तो ठीक थी। डॉ. शुजाअत ने पूछा।

साजिद ने पूरा किस्सा बता दिया।

डॉ. अतिया अजीज गुस्से से कांपने लगी।

जरा अपना मोबाइल लाओ। डॉ. अतिया ने साजिद से कहा।

आप किसे फोन करेंगी?

मैं 'हक्कानी' को यहां बुलाना चाहती हूं।

अरे मैडम...अब...डॉ. शर्मा बोले।

नहीं...उसे यहां आना चाहिए...और देखना चाहिए कि उसने क्या किया है।

बड़ी मुश्किल से इन लोगों ने डॉ. अतिया अजीज को मनाया।

लेकिन साजिद ये सब क्या है यार? हम लोग कब तक ये चुपचाप देखते रहेंगे? 'हक्कानी' ने अपनी पहली बीवी को मारकर घर से निकाल दिया। सोलह साल की लड़की से शादी की...उसके बाद फिर एक लड़की को खरीद लाया और कहा कि निकाह पढ़ाया है...

मैं कहती हूं बुलाइए 'हक्कानी' को यहां। डॉ. अतिया को फिर जोश आ गया।

आपा आप ठीक कह रही हैं लेकिन...

लेकिन क्या?

वो समझता है इस्लाम की आड़ में जो चाहे कर सकता है, पहले तो उसका यही भ्रम तोड़ना चाहिए।

❑❑❑

मेरे मौला

याचना, प्रेम, विनय और करुणा...यह सब क्या है...आंखों के सामने तस्वीर आ गई...मेरे मौला बुला ले मदीने मुझे...उलाहना...घिसे-पिटे टेप से निकलकर आवाज कानों के परदों से टकराती लाखों-करोड़ों की भीड़ से गुजरती खलील मियां के चेहरे पर आकर कांपने लगती है और खलील मियां के मुंह से शाही किमाम की खुशबू में ध्वनि तरंगें घुल जाती हैं...क्या है यार...मेरे मौला बुला ले...आवाज की पिच बढ़ जाती है। मैं अपने को रोक नहीं पाता...आंखें बन्द हैं और खलील मियां के हाथों में कैंची और कंघा मेरे चेहरे पर तेजी से गश्त कर रहे हैं।

''क्या हज करने का इरादा है?...''मैंने अश्लील मियां से पूछा...लहजे में जो छिपा हुआ व्यंग्य था, वे समझ नहीं पाए। खलील मियां सोच ही कैसे सकते थे कि कोई मुसलमान हज करने के इरादे को व्यंग्यात्मक स्वर में भी कह सकता है।

''जब मौला चाहेंगे...अभी कहां हमारी सुनवाई हुई है।''

''क्यों, क्या बात है?''

''दो लड़कियों का ब्याह करना है, सर!''

''कितने बच्चे हैं तुम्हारे?''

''दो लड़के और माशा अल्ला से चार लड़कियां।''

''हूं।'' मैं खामोश हो गया। मेरी 'हूं' में क्या नहीं था...

''लड़के क्या करते हैं?'' मैंने फिर पूछा।

''यही काम, जो हम करते हैं।''

मैं समझ गया...यानी बाल काटते हैं, दाढ़ी बनाते हैं।

हाइड्रो पॉवर स्टेशन, जिसे चालीस साल पहले आधुनिक भारत का तीर्थ कहा जाता था, अब सिर्फ पॉवर हाउस रह गया है। पुराने सोवियत यूनियन के विकास मॉडल पर बनाया गया पॉवर हाउस...लैट, बंगले, क्लब, शादीघर, मार्केट, अस्पताल, सिनेमा हॉल...सब कुछ अपना...पॉवर हाउस की सेंट्रल मार्केट मे खलील मियां की नेशनल हेयर कटिंग सैलून...

सेंट्रल मार्केट में दूसरे दुकानदार खलील मियां को खलील मियां कहते हैं...कुछ मजाक में खाली मियां भी कहते हैं...खाली मतलब कुछ नहीं, मियां को मतलब

मुसलमान...अपने इस नाम पर खलील मियां भाव शून्य चेहरे से ताकते हैं, बोलते कुछ नहीं...

बीएससी इंजीनियरिंग के बाद पॉवर हाउस में नौकरी...आप नेशनलिस्ट मुसलमान हो नकवी साहब...नेशनलिस्ट अरे आप होली में रंग खेलते हो...आप दिवाली में जुआ खेलते हो...आप नेशनलिस्ट मुसलमान हो...तिवारी जी, क्या आप नेशनलिस्ट हिन्दू हो? आप ईद में सेवई खाते हो? आप बकरीद के कबाब खाते हो? आप नेशनलिस्ट हिन्दू हो?...

''मियां बकरीद आ रही है...कुर्बानी कहां करोगे?''...खलील मियां ने तीस साल पहले मुझसे यही सवाल पूछा था, जो आज पूछ रहे हैं।

''अच्छा, बकरीद...''

''हां, कल चांद हो गया तो परसों...''

''तुम तो जानते ही हो, खलील मियां, हम गांव में ही कुर्बानी कर देते हैं।''

''हां, मियां...यहां कहां लफड़े में फंसोगे...''

ऊपर तिवारी जी, नीचे त्रिपाठी जी, बाएं हाथ वाले लैट में वर्मा जी, दाहिनी तरफ सिंह साहब...नकवी जी, आप जब मीट पकाया करें, तो हमें बता दिया करें...हम लोग उस दिन कहीं और चले जाया करेंगे...हमारी मैडम को मीट की दुर्गंध से उल्टी आ जाती है...पर आप लोग खाओ...

नयी-नयी शादी हुई थी...सफिया गोश्तखोर...अब क्या हो? सफिया को अम्मां...अब्बू...मीटिंग बैठ गई...असिस्टेंट इंजीनियर...देखो छत पर अंगीठी ले जाओ...वहां गोश्त भून लो...हवा में खुशबू उड़ जाएगी...तब नीचे लाओ...किसी को पता चल गया...? खलील मियां ने कहा था पहली बकरीद पर...''अगर आप कहें, तो मैं कुर्बानी...?

''अरे, छोड़ो! ऐसी कुर्बानी ये क्या फायदा कि हम ही कुर्बान हो जाएं...

''नहीं-नहीं...खलील मियां...सब हो जाएगा...तुम फिक्र न करो...''

यार, यह मुसलमान भी अजीब कौम है...मेरे मौला बुला ले...अरे यार,अपनी बदहाली को दूर करने की दुआ नहीं मांगोगे...अपने पिछड़ेपन को दूर नहीं करोगे...बस, मदीने...अरे, तो वहां से आए ही क्यों थे...आए कहां थे...पता नहीं कबसे हम रटने लगे...मेरे मौला...अब देखिए, मेरे मां-बाप को क्या सूझी कि मेरी नाम लख्ते हसनैन नकवी रख दिया...अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी तक तो नाम ठीक-ठाक रहा, लेकिन पॉवर हाउस में...एल एच नकवी करना पड़ा। फिर 'क' को 'ब' बनाना पड़ा...अरे यार, यह तो सभी करते हैं...सी एल शर्मा क्या अपने को छेदीलाल शर्मा लिखें?...

''आप नेशनलिस्ट मुसलमान हो, नकवी जी...अपने-अपनी लड़की को स्कूल

में संस्कृत दिलवायी है।''

पॉवर हाउस के चार हजार कर्मचारियों में ग्यारह सौ इंजीनियर...उनमें से एक लख्ते हसनैन नकवी...बाकी शर्मा, पाठक, पांडेय, द्विवेदी, चतुर्वेदी, सिंह, वर्मा, लाल और पाल...क्या नाम है मेरा...नकवी...कोई कह रहा था...नकवी जी, परचेज डिपार्टमेंट में कोई खान नाम का लड़का आया है...आया होगा साला! मुझे क्या करना है?...अबे, हम शिया मुसलमान हैं...सैयद हैं...नकवी हैं...हमें खानों-पठानों से क्या मतलब?...ये सब बारी-बारी से आकर क्यों बताते हैं कि 'परचेज' में खान का कोई लड़का...

''आज अयोध्या में बाबरी मस्जिद पर जमाव है...''सफिया ने सुबह अखबार देखते हुए कहा था, ''कई लाख लोग पहुंच गए हैं...''

''मुझे लगता है, कुछ न कुछ होकर रहेगा।''

''तो तुम आज पॉवर हाउस न जाओ।''

''क्यों?''

''कहीं फसाद न हो जाए।''

''पॉवर हाउस न गया, तो कहीं कोई यह न समझे कि...''

''क्या न समझे?''

''यही कि देखो, 'प्रोटेस्ट' कर रहा है...''

दिन भर काम नहीं हुआ था...रेडियो...टी.वी...खबरें...फोन...मैं केबिन में अकेला बैठा था...न कुछ जानने की कोशिश कर रहा था और न कोई मुझे बता रहा था...बस शोर...बढ़ते शोर से...अचानक जोर का पटाखा फूटा था...आवाजें तेज हो गई थीं...खनखनाती हुई आवाज में मल्होत्राा ने कहा, ''साढ़े पांच बज गए...घर नहीं जाओगे क्या आज, नकवी साहब?'' मैं घबराकर खड़ा हो गया था...यह क्या कह रहा है मल्होत्राा...'क्या आज' घर नहीं जाओगे...क्यों नहीं जाऊंगा...

सफिया टी.वी. के सामने बैठी थी...उन लोगों ने बाबरी मस्जिद ढा दी...अरे यह सब पॉलिटिक्स है...बन्द करो टी.वी...साफिया ने टी.वी. बन्द कर दिया...रात में सफिया सो गई, तो मैंने रेडियो खोला...धीरे-धीरे...बीबीसी...यह सब पॉलिटिक्स है, तुम सो जाओ, लख्ते हसनैन नकवी...रात के दो बजा है...सो जाओ, एल एच नकवी...तुम ऐसे कौन-से सच्चे और पक्के मुसलमान हो...सो जाओ, रात के तीन बजे हैं...नकवी जी, सो जाओ...अब तो चार बजा है...क्या कल छुट्टी लोगे...एप्लीकेशन जी एम के पास जाएगी, तो क्या सोचेगा...मियां जी बाबरी मस्जिद का दुख मना रहे हैं।

''आप सोये नहीं?'' सुबह की नमाज पढ़ने सफिया उठी, तो देखा कि मैं बैठा हूं।

''हां, बस, कुछ वैसे ही...''

''क्या?'' साफिया ने टटोलने वाली नजरों से देखा...मैं उसके नमाज-रोजे का

मजाक बनाने वाला...ईद-बकरीद मारे-खदेड़े नमाज के लिए जाने वाला...बैठा रहा रात भर...

सफिया दूसरे कमरे में नमाज पढ़ने चली गई...मैं उसे देख सकता था...यार तुम्हें मतलब क्या बाबरी मस्जिद से...यह चक्कर क्या है...चलो उठो, चाय बनाओ...

''मेरे मौला...गुजरात की खबरें पढ़ रहे हैं, सर...बुला ले...''खलील मियां ने घिसे टेप की आवाज के साथ सुर मिलाया।

''पहले यह टेप बन्द करो...''उन्होंने टेप हल्का कर दिया।

''यह सब पॉलिटिक्स है...''

''काहे के लिए?''

''हुकूमत के लिए।''

''अरे, तो हुकूमत तो वो कर रहे हैं न?'' खलील मियां के पूछने पर मैं चकरा गया...यार, ये कह तो ठीक री रहा है। तब क्या बात है?

''मियां, मानों न मानों...ये लोग...मुसलमानों को नेस्तोनाबूद कर देना चाहते हैं...पर सोचो, मियां, मुसलमानों ने इनका बिगाड़ा क्या है...अरे, हम दिन-रात खटते हैं, तो ऊपर वाला गोश्त-रोटी का इंतजाम कर देता है...मियां, फिर ये लोग क्यों ऐसा करते हैं?''

''मुसलमान भी तो बदमाशी करते हैं।''

''हां, बेशक...तो उन्हें पकड़ो, सजा दो...पर मियां, यह तो न करो...जिन्दा तो न जलाओ मासूमों को...अब तो आने लगे...मौत के पसीने मुझे...मौला बुला ले मदीने मुझे...बताओ न मियां, हम क्या करें?...मदीने मुझे...''

''अरे, यह तुमने क्या किया, खलील मियां?'' मैंने आंखें खोलकर सामने लगा आइना देखा।

''क्या...'खत' तो आप लगवाते नहीं...''

''खत-वत छोड़ो...तुम सालों से दाढ़ी ट्रिम कर रहे हो मेरी।

''तो, मियां क्या हुआ?''

''अरे, यह हुआ कि तुमने दाढ़ी इतनी छोटी कर दी कि लगता है, है ही नहीं।''

''नहीं...इतनी तो...पर अच्छा ही है, मियां!'' वे चुप हो गए। कुछ नहीं बोले। लेकिन शायद वे कहना चाहते थे-पाजामा खुलवाने में टाइम लगता है, मियां...दाढ़ी देखकर...अब तो आने लगे...मौत के पसीने मुझे...मेरे मौला...

''नहीं...''मैं बोला, लेकिन वह मेरी आवाज नहीं थी।

❑❑❑

शाह आलम कैम्प की रुहें

पांच

शाह आलम कैम्प में दिन तो किसी न किसी तरह गुजर जाते हैं लेकिन रातें कयामत की होती हैं, ऐसी नसा नसी का आलम होता है कि अल्लाह बचाये। इतनी आवाजें होती हैं कि कानपड़ी आवाज नहीं सुनाई देती। चीख-पुकार, शोर-गुल, रोना-चिल्लाना, आहें-सिसकियां...

रात के वक्त रुहें अपने बाल-बच्चों से मिलने आती हैं। रुहें अपने यतीम बच्चों के सिरों पर हाथ फेरती हैं। उनकी सूनी आंखों में अपनी सूनी आंखें डालकर कुछ कहती हैं। बच्चों को सीने से लगा लेती हैं। जिन्दा जलाये जाने से पहले जो उनकी जिगरदोज चीखें निकली थीं वे पृष्ठभूमि में गूंजती रहती हैं।

सारा कैम्प जब सो जाता है तो बच्चे जागते हैं। उन्हें इंतजार रहता है अपनी मां को देखने का...अब्बा के साथ खाना खाने का।

''कैसे हो सिराज'' अम्मां की रुह ने सिराज के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

''तुम कैसी हो अम्मां।''

मां खुश नजर आ रही थी। बोली''सिराज...अब...मैं रुह हूं...अब मुझे कोई जला नहीं सकता।''

''अम्मां...क्या मैं भी तुम्हारी तरह हो सकता हूं?''

दो

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद एक औरत की घबराई बौखलाई रूह पहुंची जो अपने बच्चे को तलाश कर रही थी। उसका बच्चा न उस दुनिया में था न वह कैम्प में था। बच्चे की मां का कलेजा फटा जाता था। दूसरी औरतों की रुहें भी इस औरत के साथ बच्चे को तलाश करने लगीं। उन सबने मिल कर कैम्प छान मारा...मोहल्ले गईं...घर धूं-धूं करके जल रहे थे। चुंकि वे रूहें थीं इसलिए जलते हुए मकानों के अन्दर घुस गईं...कोना-कोना छान मारा लेकिन बच्चा न मिला।

आखिर सभी औरतों की रूहें दंगाइयों के पास गईं। वे कल के लिए पेट्रोल बम बना रहे थे। बन्दूकें साफ कर रहे थे। हथियार चमका रहे थे।

बच्चे की मां ने उनसे अपने बच्चे के बारे में पूछा तो वे हंसने लगे और बोले ''अरे पगली औरत, जब दस–दस बीस–बीस लोगों को एक साथ जलाया जाता है तो एक बच्चे का हिसाब कौन रखता है? पड़ा होगा किसी राख के ढेर में।''

मां ने कहा ''नहीं, नहीं, मैंने हर जगह देख लिया है...कहीं नहीं मिला।''

तब किसी दंगाई ने कहा ''अरे ये उस बच्चे की मां तो नहीं है जिसे हम त्रिशूल पर टांग आए हैं।''

तीन

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। रूहें अपने बच्चों के लिए स्वर्ग से खाना लाती हैं, पानी भी लाती हैं, दवाएं लाती हैं और बच्चों को देती हैं। यही वजह है कि शाह आलम कैम्प में न तो कोई बच्चा नंगा–भूखा रहता है और न बीमार। यही वजह है कि शाह आलम कैम्प बहुत मशहूर हो गया है। दूर–दूर मुल्कों में उसका नाम है।

दिल्ली से एक बड़े नेता जब शाह आलम कैम्प के दौरे पर गए तो बहुत खुश हो गए और बोले ''ये तो बहुत बढ़िया जगह है...यहां तो देश के सभी मुसलमान बच्चों को पहुंचा देना चाहिए।''

चार

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। रात भर बच्चों के साथ रहती हैं। उन्हें निहारती हैं...उनके भविष्य के बारे में सोचती हैं। उनसे बातचीत करती हैं।

''सिराज अब तुम घर चले जाओ।'' मां की रूह ने सिराज से कहा।

''घर''? सिराज सहम गया। उसके चेहरे पर मौत की परछाइया नाचने लगीं।

''हां, यहां कब तक रहोगे। मैं रोज रात में तुम्हारे पास आया करूंगी।''

''नहीं, मैं घर नहीं जाऊंगा...कभी नहीं...कभी...''धुआं, आग, चीखें, शोर।

''अम्मां, मैं तुम्हारे और अब्बू के साथ रहूंगा।''

‘‘तुम हमारे साथ कैसे रह सकते हो सिक्कू...’’
‘‘भाईजान और आपा भी तो रहते हैं न तुम्हारे साथ।’’
‘‘उन्हें भी तो हम लोगों के साथ जला दिया गया था न।’’
‘‘तब...तब...तो मैं...घर चला जाऊंगा अम्मां।’’

पांच

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद एक बच्चे की रूह आती है...बच्चा रात में चमकता हुआ जुगनू जैसा लगता है...इधर-उधर उड़ता फिरता है...पूरे कैम्प में दौड़ा-दौड़ा फिरता है...उछलता-कूदता है...शरारतें करता है...तुतलाता नहीं...साफ-साफ बोलता है...मां के कपड़ों से लिपटा रहता है...बाप की उंगली पकड़े रहता है।

शाह आलम कैम्प के दूसरे बच्चे से अलग यह बच्चा बहुत खुश रहताहै।

‘‘तुम इतने खुश क्यों रहते हो बच्चे?’’

‘‘तुम्हें नहीं मालूम...ये तो सब जानते हैं।’’

‘‘क्या?’’

‘‘यही कि मैं सुबूत हूं।’’

‘‘सुबूत? किसका सुबूत?’’

‘‘बहादुरी का सुबूत है।’’

‘‘किसकी बहादुरी का सुबूत हो?’’

‘‘उनकी जिन्होंने मेरी मां का पेट फाड़ कर मुझे निकाला था और मेरे दो टुकड़े कर दिए थे।’’

छः

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। एक लड़के के पास उसकी मां की रूह आई। लड़का देख कर हैरान हो गया।

‘‘मां तुम आज इतनी खुश क्यों हो?’’

‘‘सिराज मैं आज जन्नत में तुम्हारे दादा से मिली थी। उन्होंने मुझे अपने अब्बा से मिलवाया...उन्होंने अपने दादा...से सगड़ दादा...तुम्हारे नगड़ दादा से मैं मिली। मां की

आवाज में खुशी फूटी पड़ रही थी।

"सिराज तुम्हारे नगड़ दादा...हिन्दू थे...हिन्दू...समझे? सिराज ये बात सबको बता देना...समझे?"

सात

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। एक बहन की रूह आई। रूह अपने भाई को तलाश कर रही थी। तलाश करते-करते रूह को उसका भाई सीढ़ियों पर बैठा दिखाई दे गया। बहन की रूह खुश हो गई। वह झपट कर भाई के पास पहुंची और बोली "भइया।" भाई ने सुन कर भी अनसुना कर दिया। वह पत्थर की मूर्ति की तरह बैठा रहा।

बहन ने फिर कहा "सुनो भइया।"

भाई ने फिर नहीं सुना। न बहन की तरफ देखा।

"तुम मेरी बात क्यों नहीं सुन रहे भइया।" बहन ने जोर से कहा और भाई का चेहरा आग की तरह सुर्ख हो गया। उसकी आंखें उबलने लगीं...वह झपट कर उठा और बहन को बुरी तरह पीटने लगा...लोग जमा हो गए। किसी ने लड़की से पूछा कि उसने ऐसा क्या कह दिया था कि भाई उसे पीटने लगा...बहन ने कहामैंने तो सिर्फ इन्हें भइया कह कर पुकारा था।" एक बुजुर्ग बोला "नहीं सलीमा नहीं; तुमने इतनी बड़ी गलती क्यों की।" बुजुर्ग फूट-फूट कर रोने लगा और भाई अपना सिर दीवार पर पटकने लगा।

आठ

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। एक दिन दूसरी रूहों के साथ एक बूढे. की रूह भी शाह आलम कैम्प आ गई। बूढ़ा नंगे बदन था, ऊंची धोती बांधे था, पैरों में चप्पल थी और हाथ में एक बांस का डंडा था। धोती में उसने कहीं घड़ी खोंसी हुई थी।

रूहों ने बूढे.से पूछा "क्या तुम्हारा भी कोई रिश्तेदार कैम्प में है?"

बूढ़े ने कहा "नहीं और हां।"

रूहों ने बूढ़े को पागल रूह समझकर छोड़ दिया और वह कैम्प का चक्कर लगाने

लगा।

किसी ने बूढ़े से पूछा ''बाबा, तुम किसे तलाश कर रहे हो?''

बूढ़े ने कहा ''ऐसे लोगों को जो मेरी हत्या कर सकें।''

''क्यों?''

''मुझे आज से पचास साल पहले गोली मार कर मार डाला गया था। अब मैं चाहता हूं कि दंगाई मुझे जिन्दा जला कर मार डालें।''

''तुम ये क्यों करना चाहते हो बाबा?''

''सिर्फ ये बताने के लिए कि न उनके गोली मार कर मारने से मैं मरा था और न उनके जिन्दा जला देने से मरूंगा।''

नौ

शाह आलम कैम्प में एक रूह से किसी नेता ने पूछा

''तुम्हारे मां-बांप है?''

''मार दिया सबको।''

''भाई-बहन?''

''नहीं हैं।''

''कोई हैं?''

''नहीं।''

''यहां आराम से हो?''

''हां हैं।''

''खाना-वाना मिलता है।''

''हां, मिलता है।''

''कपड़े-वपड़े हैं?''

''हां, है।''

''कुछ चाहिए तो नहीं?''

''कुछ नहीं।''

''कुछ नहीं?''

''कुछ नहीं।''

नेताजी खुश हो गए। सोचा, लड़का समझदार है। मुसलमानों जैसा नहीं है।

दस

शाह आलम कैम्प में आधी रात के बाद रूहें आती हैं। एक दिन रूहों के साथ शैतान की रूह भी चली आई। इधर–उधर देख कर शैतान बड़ा शरमाया और झेंपा। लोगों से आंखें नहीं मिला पा रहा था। कन्नी काटता था। रास्ता बदल लेता था। गर्दन झुकाए तेजी से उधर मुड़ जाता था जिधर लोग नहीं होते थे। आखिरकार लोगों ने उसे पकड़ ही लिया। वह वास्तव में लज्जित होकर बोला अब ये जो कुछ हुआ है...इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है...अल्लाह कसम मेरा हाथ नहीं है।''

लोगों ने कहा ''हां...हां'' हम जानते हैं। आप ऐसा कर ही नहीं सकते। आपका भी आखिर एक स्टैंडर्ड है।''

शैतान ठंडी सांस लेकर बोला ''चलो दिल से एक बोझ उतर गया...आप लोग सच्चाई जानते हैं।''

लोगों ने कहा ''कुछ दिन पहले अल्लाह मियां भी आए थे और यही कह रहे थे।''

❑❑❑

अपाहिज

आप्पिज्जी चिंटू का सिर और फिर आईने मे मुंह देखते रह गए। उनके हाथ में कैंची और कंघा कुछ ठहर-सा गया। ऊंची कुर्सी के हत्थों पर पटरा लगाकर उन्होंने चिंटू को बाल काटने के लिए बिठाया था। उन्होंने एक बार फिर चिंटू की शक्ल देखी। चश्मा उतार देने की वजह से चिंटू की गोल-गोल आंखें और छोटी लग रही थीं।

आप्पिज्जी को पता है यहां इस इलाके में उनको आप्पिज्जी कहने वाले दरअसल उन्हें हाफिज जी कहते हैं। अब जल्दी में या मजबूरी में उनके मुंह से आप्पिज्जी ही निकलता है तो इससे किसी की गलती नहीं है। घर और वतन छोड़कर जब आदमी कहीं जाता है तो अपनी बहुत-सी चिन्हारियां घर छोड़ जाता है। आप्पिज्जी रायबरेली से यहां नरेशनगर आ गए हैं। किसी जानकार ने बताया था कि आप्पिज्जी नरेशनगर में दुकान कर लो तो अच्छी कमाई हो जाएगी। हाफिज जी अपना बक्सा लेकर आ गए थे और नीम के नीचे बैठने लगे थे। कोई दो-चार आने ज्यादा दे देता तो घर भी चले जाते थे। धीरे-धीरे दुकान हो गई। दुकान पर हिन्द हेयर कटिंग सैलून का बोर्ड लगा गया। दुकान के पीछे हाफिज जी की मेहनत तो है ही, रहमत के कराची से भेजे हुए पैसे भी हैं। रहमत न होता तो यह सब न होता। रहमत कहता है नसीर भाई न होता तो कुछ न होता यानी रहमत को पाकिस्तान जाने के लिए रुपया नसीर भाई ने ही दिया था। नसीर भाई को वक्त ने आप्पिज्जी बना दिया है।

पाकिस्तान जाने को लेकर दोनों भाइयों में कई साल लड़ाई चली थी। पहले बहस-मुबाहिसा हुआ था। फिर चीख-चिल्लाहट हुई थी। रहमत चिल्लाता 'अरे तुम्हें पता है वहां हजामत बनवाई कितनी है? दस रुपये?' नसीर यानी आज के आप्पिज्जी कहते थे, 'तो पाकिस्तान के लिए वतन छोड़ेगा।' यह चीख चिल्लाहट, यानी-गलौज में बदल जाती थी। फिर बातचीत बन्द हो जाती थी। रहमत के ऊपर कराची का भूत सवार हो गया था। वह सपने में कराची देखने लगा था। सोते जागते 'तेज गाम' पर बैठ जाता था। मोहल्ले के उन लड़कों के साथ पाकिस्तान के किस्से सुना करता था जो पाकिस्तान हो आए थे और कहते थे पाकिस्तान में सब इंपोर्टेड है। ओमेगा की घड़ियां, सोने की टेप रिकॉर्डर, जीलट के ब्लेड, जापानी खिलौने...और न जाने क्या-क्या है। रहमत इन्हीं ख्यालों में खोया रहता था। उसकी दीवानगी बढ़ती जाती थी...। एक दिन उसने कह दिया कि उसे पाकिस्तान न जाने दिया तो वह धतूरा खा लेगा। आखिर नसीर भाई ने हथियार डाल दिए थे। दिल को

समझाया कि चलो किस्मत में भाई से बिछुड़ना लिखा था तो क्या कर सकते हैं। वह कभी न खत्म होने वाली रात उन्हें याद है जब रहमत को रेल पर खोखरापार के लिए बिठाया था और वह कभी न खत्म होने वाला दिन भी बाद है जब आप्पिज्जी पाकिस्तान की धरती पर रहमत से गले मिले थे।

पचास सालों की कितनी खट्टी-मीठी यादें हैं। कभी यह कहते हुए डरते थे कि उनका भाई पाकिस्तान में है। कभी ऐसा वक्त होता था कि वह पाकिस्तान से खरीदे कपड़े पहने अपने आपको जनरल अय्यूब समझा करते थे। उनकी रग-रग में पाकिस्तान कराची की नाजमाबाद कॉलोनी की डी ब्लॉक का मकान नम्बर एक सौ सात है जो रहमत और जुलेखा का घर है जहां से सबीहा और अफसाना की शादी हो चुकी है, लेकिन जहां रहमत का अपाहिज बेटा अदनान आसमान देखने के लिए बरामदे में बिठा दिया जाता है। अब तो उसकी उम्र भी सत्ताइस की हो गई है। अदनान न बोल सकता है, न सुन सकता है। चलना-फिरना तो दूर की बात है, हाथ-पैर भी नहीं हिला सकता। लाखों-करोड़ों की दवा-इलाज के बाद रहमत ने सब कुछ अल्लाह पर छोड़ दिया है। वह सोचता है, पाकिस्तान मुल्के खुदादाद-यानी खुदा का दिया हुआ मुल्क है। अदनान भी खुदा का ही दिया हुआ है...सब्र के अलावा क्या कर सकते हैं। चाहे जो हो, रहमत और सुलेखा ही नहीं दोनों बहनें भी अदनान का जान छिड़कती हैं। आप्पिज्जी की शादी नहीं हुई बच्चे नहीं हुए। रहमत के बच्चों को वह अपने बच्चे समझते हैं। कमाल की बात है कि अदनान पूरी दुनिया में किसी को पहचानता है तो सिर्फ आप्पिज्जी को। उन्हें देखते ही उसके चेहरे पर पहचान का भाव उभर आता है। बोल नहीं सकता, लेकिन चेहरे के भावों को छिपा भी नहीं सकता। आप्पिज्जी उस पर जान छिड़कते हैं। पता नहीं, कहां-कहां उसके ठीक होने की मन्नतें मान चुके हैं।

चिंटू ने आप्पिज्जी को ऊपर से नीचे तक अधेड़ दिया था। तीसरी गली में पांडेजी की लड़की सुषमा का लड़का चिंटू गली में रात-दिन एक किए रहता है। चौथी क्लास में जाता है, लेकिन बातें ऐसी करता है जैसे सबका बाप हों आज उसके बाल काटते हुए पता नहीं क्यों आप्पिज्जी ने पूछ लिया था-क्यों चिंटू तुम बड़े होकर क्या बनोगे?

मैं फौज में जाऊंगा।

अच्छा?

कैप्टन बनूंगा।

फिर क्या करोगे?

फिर मैं देश के दुश्मनों से लड़ूंगा।

कौन है देश का दुश्मन?

पाकिस्तान।

पाकिस्तान।

हां, पाकिस्तान।

आप्पिज्जी के ऊपर से एक लहर गुजर गई वह अपने को संभालने की कोशिश करने लगे। चश्मे के धुंधले शीशे से उन्होंने चिंटू को देखा। उसकी गोल-गोल आंखें नाच रही थीं। उन्हें पता है कि यह सब चिंटू ने मोहल्ले के लड़कों से सीखा है। वरना सात साल का चिंटू क्या जाने कि पाकिस्तान किस चिड़िया का नाम है?

कैसे लड़ोगे पाकिस्तान से,

मैं वहां एटम बम गिरा दूंगा।

एटम बम!

हां, एटम बम!

आप्पिज्जी धीरे-धीरे बाल काटते रहे। उनके अन्दर ही अन्दर जहरीले गैस के बादल बरसते रहे। उन्होंने चश्मा साफ किया, पर धुंधला दिखाई पड़ता रहा। फिर उन्होंने आंखें रगड़ डालीं। आंखों की पोरों से पानी सूख जाने के बाद भी उन्हें साफ दिखाई नहीं दिया। उन्होंने सोचा कि वह चिंटू को बता दें कि पाकिस्तान में अदनान रहता है, वह न अपने हाथों खा सकता है, न पी सकता है। वह चल-फिर भी नहीं सकता। वह सिर्फ देखता है। पर पता नहीं क्या देखता है। उसके हाथ-पैर भी नहीं मिलते। वह अपने आप इधर-उधर लुढ़क जाता है और जब तक कोई सीधा न करे, वह सीधा नहीं हो पाता। लेकिन वह बड़ा प्यारा नौजवान है। उसकी रंगत सफेद है। उसके हाथों की रगें नीली हैं। उसके बाल काले हैं चेहरा लम्बोत्तरा है...वह बड़ा प्यारा है...हां, कभी-कभी उस पर दौरे पड़ जाते हैं। पता नहीं उससे कहां से ताकत आ जाती है। वह अपने आपको जख्मी कर डालता है। जख्मों से खून निकल आता है। जब वह शान्त होता है तो आसमान पर उड़ते जहाजों को देखता रहता है। उसकी जबान मजेदार और बदमजा खाने में फर्क कर लेती है। बदमजा खाना वह उगल देता है।

उन्होंने सोचा, चिंटू से कहें, बेटा अपाहिज पर एटम बम गिराकर क्या करोगे? उस पर तो खुदा ने ही कहर ढा दिया हे। उनहें लग रहा था कि पाकिस्तान पर एटम बम गिराते तो सिर्फ अदनान पर ही गिरेगा। अदनान मुल्के खुदादाद में रहता है और जिसके जिस्म पर खुद अपने किए घाव हैं। एक घाव भरने भी नहीं पाता, पपड़ी सूखने भी नहीं पाती कि वह दूसरा घाव कर लेता है। यानी जब से वजूद में आया है अपने आपसे ही लड़ रहा है। अपने जिस्म के हिस्सों को ही काट रहा है...वह अपाहिज है, नासमझ है, अपने बालों को इस तरह नोंचता है कि जड़ो सें उखड़ जाते हैं। वैसे अक्ल और समझदारी का तो उसमें नामोनिशान भी नहीं है कि लेकिन कभी-कभी गुस्से में इतना पागल हो जाता है कि अगर बस चले तो अपने जिस्म के टुकड़े-टुकड़े कर डाले...।

चिंटू के बाल कट चुके है। उसे उन्होंने कुर्सी से नीचे उतार दिया। सुषमा आ गई।

उसने चिंटू के कटे बाल इधर-उधर से घूमकर देखे और आप्पिज्जी के हाथ पर ढाई रुपए रख दिए।

सुषमा! देख तेरा बेटा पाकिस्तान पर एटम बम गिराना चाहता है।

क्यों रे! यह क्या बकता रहता है?...किसने सिखाया यह सब तुझे?

सुषमा चिंटू का हाथ पकड़कर उसे खींचती हुई बाहर निकल गई। आप्पिज्जी पैसे थामे मोड़े पर बैठ गए। सामने दीवार पर मक्के-मदीने वाला पुराना कैलेंडर पंखे की हवा में इधर-उधर हिल रहा था।

उन्होंने दीवार पर लगी रहमत की तस्वीर को देखा जो धुंधली पड़ती जा रही थी। उन्होंने दिल ही दिल में 'या अल्लाह' कहा और वीरान आंखों से गली में देखने लगे। इससे पहले कि वह कुछ सोचते, राजवीर आया, बोला आप्पिज्जी, क्या बात है, गुमसुम क्यों बैठे हो?

नहीं-नहीं, वैसे ही थक गए?

सुबह-सुबह थक गए?

थकान का क्या भरोसा मेरे भाई। बिना बताए चली जाती है।

यह कहकर वह बाल काटने में जुट गए। लेकिन बहुत कोशिश के बाद भी उनका ध्यान पाकिस्तान यानी अदनान से हट नहीं पा रहा था।

बेखयाली में आप्पिज्जी के उस्तरे से राजवीर के गाल पर पड़ा छोटा-सा दाना कट गया।

यह क्या कह रहे हो आप्पिज्जी? राजवीर बोला।

माफ करो बेटा...मैं फिटकिरी लगा देता हूं।

आप्पिज्जी कटे पर फिटकरी लगाने लगे फिर भी उनका ध्यान वहीं रहा जहां था।

❑❑❑

ताजमहल की बुनियाद

यमुना के किनारे जहां आज ताजमहल खड़ा है वहां ताजमहल बनने से पहले कई हजार बीघा उपजाऊ जमीन थी। यह जमीन बिलसारी, रगबड़ी चौखेटा और अनुगर गांव के किसानों की थी। इस जमीन पर गेहूं के अलावा मौसमी सब्जियों की शानदार खेती होती थी। गर्मियों में यहां जो खरबूजा होता था वह आस-पास क्या दिल्ली तक मशहूर था। ककड़ियां और खीरे तो लाजवाब होते थे। तरबूज में तो लगता था किसानों ने अपना दिल रख दिया है, पानी की कमी न थी। दोमट मिट्टी को पानी मिल जाए तो सोना उगलती है। आगरा जैसी मंडी पास थी जहां राजा, रंक और फकीर सौदा देखते थे, मोल-भाव न करते थे। पर भाग्य में तो और कुछ ही लिखा था। शहंशाह शाहजहां अपनी सबसे प्यारी बेगम मुमताज महल के लिए एक ऐसा मकबरा बनवाना चाहता था जो दुनिया में बेमिसाल हो।

''लेकिन शहंशाहे आलम पानी तो इमारत की बुनियाद को कमजोर कर देता है।'' उस्ताद अहमद लाहौरी ने दरबारे खास में हाथ जोड़कर अर्ज किया।

''अहमद मकबरा तो जमना के किनारे ही बनना चाहिए...मैं चांदनी रातों में, उस मकबरे का अक्स जमना के पानी में देखना चाहता हूं।'' जहांपनाह ने कहा।

''हुक्मे सरकार।'' उस्ताद अहमद खां लाहौरी ने जमीनें देखना शुरू कर दिया। उसे ऐसी जमीन चाहिए थी जो ताजमहल जैसी इमारत को सहेज सके। उस्ताद अहमद खां लाहौरी की तजुर्बेकार आंखों ने इस्फहान, शीराज, तबरेज, बल्ख, बुखारा, समरकंद ही नहीं, बल्कि बगदाद और दमिश्क की जमीनें देखी थीं। उसने यूनान और रूस की देवियों के मकबरे देखे थे।

वह जानता था कि कौन सी जमीन का कितना बड़ा जिगर होता है। कौन-सी जमीन हवा के गुब्बारे की तरह फट जाती है और कौन सी जमीन अपने सीने पर सैकड़ों साल तक लाखों मन का बोझ उठाए रहती है। गलती उस्ताद अहमद लाहौरी की नहीं उस जमीन की थी जहां ताज बना है।

''और तुम जानते हो आज क्या हो रहा है।''

''क्या?''

''चारों गांवों के किसान...अपनी जमीन वापस मांग रहे हैं।''

''नहीं...ये कैसे हो सकता है।''

''ये तो किसान भी नहीं जानते।''

''लेकिन...''

''तुम जानते हो, ताजमहल सिर्फ शाहजहां ही ने नहीं बनवाया है। ताज तो उससे बहुत पहले बनना शुरू हो गया था और बाद तक बनता रहा...अब भी बन रहा है...ताज पूरा तो नहीं हुआ है...न होगा...लेकिन किसानों का कहना है हमें हमारी जमीन चाहिए।''

''तो पुलिस...''

''देखो लोकतंत्र है...वैसे शाहजहां के समय में भी लोकतंत्र था, लेकिन तब का लोकतंत्र...''

''मतलब लोकतंत्र कमजोर हुआ है?''

''हां। और तुम्हारी मदद कीसबसे बड़ी वजह यही है।''

''बाअदब, बामुलाहिजा होशियार, शहंजाहे हिन्दोस्तान शाहजहां संसद में तशरीफ लाते हैं।''

मीडिया दीवाना हो गया। लगा पागलखाने का दरवाजा खुल गया है। पूरे शाही लिबास में सजे-सजाए सिर पर ताज, जलाल और जमाल की मूर्ति बने शाहजहां ने संसद में प्रवेश किया। चारों तरफ रौशनी फैल गई। घंटा बजने की आवाजें आने लगीं। फरियादी आगरा के किले की दीवार से लटकती रस्सी को खींचने लगे और पूरे किले में घंटा बजने की आवाज गूंजने लगी। धीरे-धीरे घंटा बजने की आवाज तूती की आवाज में बदल गई। और वही शहनाई की आवाज में तब्दील हो गई। सांसदों ने सम्राट का स्वागत किया और सम्राट ने अपना भाषण शुरू कर दिया...

''देखो, उस समय के लोग सम्राट को भगवान का अवतार मानते थे।''

''आज?''

''भगवान को भी भगवान नहीं मानते।''

''फिर?''

''ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने नया अवतार लिया है।''

''कौन है वह अवतार।''

''लोकतंत्र।''

''लोकतंत्र?''

''हां।''

''वही भगवान है...अपराजेय है सर्वशक्तिमान है, दयालु...''

''सांसदों, माबदौलत आज बहुत खुश हैं...ताजमहल आज जितना खूबसूरत है...जितना बड़ा है...जितना शानदार है...जितना मजबूत है...जितना मशहूर है...उतना तो मेरे जमाने में भी नहीं था...माबदौलत आज के हाकिए वक्त यानी डेमोक्रेसी मतलब

लोकतंत्र के एहसानमंद है...सरकारी खजाने में जितना सोना है उतना पहले कभी न था...''तालियां गड़गड़ाने लगीं

''आज हुकूमत सही हाथों में है...मैंने तो सिर्फ एक ताजमहल बनवाया था...आपने तो सैकड़ों ताजमहल बनवा दिए हैं...मैंने तो सिर्फ जमना के किनारे ताज बनवाया था आपने हर नदी के किनारे...मैंने तो सिर्फ 22 करोड़ खर्च किए थे आपने...''

''...यह संसद नहीं है, दीवाने आम है शहंनशाह। आपको अब अपना पता भी याद नहीं...देखिए सम्राट...इधर-उधर नजर डालिए।''

''बादशाह सलामत ताजमहल की बुनियाद को मजबूत बनाने के लिए पानी की जरूरत है...और पानी नहीं है...जमना सूख रही है...पानी नहीं है...पानी...''उस्ताद अहमद लाहौरी ने चीखकर कहा। वह स्पीकर की टेबुल के नीचे से निकल आया था।

''उस्ताद अहमद खां तुमने ताज की बुनियाद में क्या रखा था?''

''...मैंने ताज की बुनियाद को एक हजार साल तक के लिए पक्का बना दिया था। लेकिन...''

''वहां रखा क्या था?''

''चूंकि हुक्म था कि ताजमहल जमुना के किनारे बनाया जाएं...''

''...ये लोग कहां से आ रहे हैं? सैकड़ों और फिर हजारों और फिर लोखों...ये घर में क्यों नहीं बैठते...ये बैठते क्यों नहीं...ये सब एक साथ क्यों आ रहे हैं? ये एक दूसरे से पूछते क्यों नहीं कि तुम्हारा धर्म क्या है? तुम्हारा मजहब क्या है? और फिर एक दूसरे से लड़ने क्यों नहीं लगते...खून की होली क्यों नहीं खेलते...ये एक दूसरे की जाति क्यों नहीं पूछते? ये अलग-अलग जबानें क्यों नहीं बोलते...ये सब एक जैसे क्यों लगते हैं...क्यों ऐसा है...ये सब एक दिशा में आगे क्यों बढ़ रहे हैं...बूढ़े जवानों की तरह चल रहे हैं और जवान चिड़ियां की तरह उड़ रहे हैं...''

''ताज को हटाओ।''

''कहां ले जाएं?''

''चाहे जहां ले जाओ।''

''ताज पर हमें गर्व है।''

''करते रहो।''

''ताज हमारी संस्कृति का प्रतीक है।''

''बनाए रखो।''

''ताज हमारा...?''

''...शहंनशाह में फिर अर्ज करना चाहता हूं कि ताजमहल की बुनियाद को पानी की बड़ी जरूरत है। जमुना में अब पानी नहीं है। अगर ताजमहल की बुनियाद को पानी न

मिला तो...गजब हो जाएगा...हुजूरे आलम तो जानते ही हैं कि पानी के वगैर कुछ नहीं हो सकता...आदमी हो या पेड़-पौधे हों...जानवर हों या...''

''क्यों जी अब तुम ये बखेड़ा क्या खड़ा कर रहे हो?'' एक सांसद ने कहा।

''ये तुमने...पानी...पानी क्या लगा रखा है...कौन कहता है पानी की कमी है...जो कहता है उसे शर्म से पानी-पानी हो जाना चाहिए।...आज पानी पचास हजार करोड़ का उद्योग है...समझे...?''

''आलमपनाह...मैं तो कहता ही रहूंगा...पानी...पानी...और पानी।'' उस्ताद अहमद लाहौरी ने कहा।

''उस्ताद...पानी का नाम भी मत लो...''

''क्यों?''

''चुप रहो...संसद का सम्मान करो...इसे चाहे दीवाने खास समझो...चचाहे आम...

''ताजमहल की बुनियाद के लिए पानी क्यों जरूरी है...उस्ताद अहमद लाहौरी?'' शहंशाह ने पूछा।

''जहांपनाह...पांच बहुत गहरे कुएं खोदे गए थे..उसमें साखू की लकड़ी भरी गई थी...साखू की लकड़ी पानी में पत्थर जैसी हो जाती है...इमारत को सहारा देती है...पानी नहीं होता...जो चटख जाती है...''

''झूठ बक रहा है उस्ताद।'' किसी ने चीखकर कहा।

''क्या झूठ?''

''ताजमहल की बुनियाद में रखी लकड़ियां पानी में मजबूत नहीं होती...''

''फिर...?''

''खून जो काम कर सकता है वह पानी नहीं कर सकता।''

❑❑❑

लकड़ी के अब्दुल शकूर की हँसी

(प्रस्तावना–हम तुम्हें मार रहे हैं लेकिन तुम हँस रहे हो। देखो कितनी सच्ची, प्यारी और अनोखी हँसी है। ऐसी हँसी तो शायद तुम पहले कभी नहीं हँसे। या हँसे होंगे पर भूल गए। ये यह अच्छा है कि तुम्हारी याददाश्त कमजोर है तुम उन सबको भूल जाते हो जिन्होंने तुम्हें हँसाया था। तुम दिल खोल कर हँस रहे हो। अब देखो तुम बदल रहे हो। तुम्हारे आंसू नहीं हैं ये तो ओस की बूंदें हैं जो आकाश से तुम्हारे ऊपर टपक रही हैं। देखो तुम्हारा अल्लाह भी तुमसे खुश है क्योंकि तुम खुश हो। देखो तुम जिंदा हो। देखो तुम बोल सकते हो।आगे बढ़ रहे हो। तुम्हारी आने वाली पीढ़ियाँ तुम पर गर्व करेंगीं कि तुम कभी नहीं रोये। सिर्फ हँसते रहे, सिर्फ हँसते हो। हँसते रहो, हमारी यही कामना है।)

एक

अब्दुल शकूर वल्द अब्दुल वहीद वल्द करीम वल्द रहीम वल्द रमना वल्द चमना के अंदर एक बड़ी खूबी पैदा हो गई है। वैसे तो अब्दुल शकूर बढ़ई का काम करता है। उसकी सात पुश्तों से यही काम होता आया है।

आजकल अब्दुल शकूर बहुत खुश है। क्योंकि उसके अंदर एक खास खूबी पैदा हो गई है। जो और किसी में नहीं है। मतलब यह कि अब्दुल शकूर जब पीटा जाता है तब वह हँसता है। खुश होता है। इस बात पर उसके घर वाले भी हँसते हैं। तालियां बजाते हैं और पीटने वाला तो फूला नहीं समता।

दो

– अब्दुल शकूर तुम्हें मार खाने में मजा आता है?
– जी हाँ, मुझे मार खाने में मजा आता है।
– कितना मजा आता है।
– यह तो नहीं बता सकता है। लेकिन समझ लीजिए बेहिसाब मजा आता है।
– कोई भी मारता है तो तुम्हें मजा आता है?
– नहीं।
– फिर कौन मारता है जब तुम्हें मजा जाता है?
– जब आप मारते हैं तो मुझे मजा आता है।

तीन

– अब्दुल शकूर मैं मीडिया के सामने तुमसे एक सवाल पूछ रहा हूँ।
– जी पूछिए।
– अब्दुल शकूर मैं जब तुम्हें मारता हूँ तो तुम्हें चोट बिल्कुल नहीं लगती?
– नहीं मेरे को नहीं लगती।
– तुम्हें बिल्कुल दर्द नहीं होता?
– नहीं मुझे कोई दर्द नहीं आता।
– तुम्हारी तो खाल तक उधड़ जाती है तुम्हें बिल्कुल तकलीफ नहीं होती?
– जी नहीं मुझे बिल्कुल तकलीफ नहीं होती।
– क्यों अब्दुल शकूर?
– इसलिए कि आप मुझे लकड़ी का जो समझते हैं।

चार

– अब्दुल शकूर मैं तुम्हें क्यों मारता हूँ?
– इसलिए कि मैं देश से प्रेम नहीं करता।
– यह तुम्हें कैसे पता चला कि तुम देश से प्रेम नहीं करते।

– सर यह तो मुझे पता ही नहीं चलता है अगर...
– अगर क्या? बताओ बताओ?
– अगर...
– फिर तुम रुक गए...बताओ?
– अगर आपने न बताया होता तो....

पांच

मेरा एक बहुत बड़ा दुश्मन है। उसके पास बहुत ताकत है। वह मुझे बर्बाद कर देना चाहता है। मैं उसका सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ। वह कभी छुपा हुआ वार करता है कभी सामने से हमला करता है। तुम जानते हो अब्दुल शकूर वह कौन है?
– हाँ मैं जानता हूँ कौन है।
– बताओ वह कौन है?
– मैं हूँ मैं....

छः

– अब्दुल शकूर क्या तुम सपने देखते हो?
– हां जी, मैं सपने देखता हूँ।
– क्या सपना देखते हो ?
– मैं सपना देखता हूँ कि एक हरी घास का मैदान है और उस मैदान में एक घोड़ा घास चर रहा है।
– वह घोड़ा कौन है।
– वह मैं हूँ।
– फिर क्या होता है?
– हरी घास चर ही रहा हूँ तभी मेरे मुँह में लगाम डाल दी जाती है और मैं घास भी नहीं चर पाता।
– तब?

– तब मेरी पीठ पर कोई बैठ जाता है।
– तुम्हारी पीठ पर कौन बैठ जाता है?
– मेरी पीठ पर आप ही बैठ जाते हैं और मुझे कोड़ा मारते हैं। मैं तेजी से भागता हूँ।
– फिर ?
– सामने से कोई चला आ रहा है।
– कौन चला आ रहा है?
– मैं ही चला आ रहा हूँ।
– फिर ?
– और मैं अपने को रौंदता हुआ निकल जाता हूँ।

सात

– तुम पढ़ क्यों नहीं पाए अब्दुल शकूर तमाम स्कूल कॉलेज खुले हुए हैं?
– हाँ, गलती मेरी ही है।
– तुम अपना इलाज क्यों नहीं करा पाए अब्दुल शकूर तमाम अस्पताल खुले हुए हैं?
– हाँ, गलती मेरी ही है
– तुम नौकरी क्यों नहीं पा पाये अब्दुल शकूर तमाम दफ्तर खुले हुए हैं ?
– हाँ गलती मेरी है।
– तुम कितनी गलतियां करोगे अब्दुल शकूर?
– लकड़ी का आदमी गलती नहीं करेगा तो क्या करेगा साहब....

आठ

– अब्दुल शकूर तुम्हारे घर की दीवार गिर गई।
– कोई बात नहीं गिर जाने दो।
– अब्दुल शकूर तुम्हारे घर की छत गिर गई।
– गिर जाने दो कोई बात नहीं।
– अब्दुल शकूर तुम्हारे बीवी–बच्चे नीचे दब गये हैं।

– दब जाने दो कोई बात नहीं।
– तुम्हारी दुकान में आग लग गई है। तुम्हारे सारे औजार जल गए। तुम्हारे पास खाने को कुछ नहीं है।
– कुछ भी हो जाये, हो जाए।
– क्यों अब्दुल शकूर?
– अच्छे दिन आएंगे।
– ये तुमसे किसने कहा।
– मुझे यकीन है।
– कैसे?
– आपने ही बताया है...।

नौ

– अब्दुल शकूर तुमने खाना खाया?
– खा लिया।
– लेकिन तुम्हारे घर में तो कुछ था नहीं।
– तुमने पानी पिया?
– जी पी लिया।
– लेकिन तुम्हारे घर में पानी तो था नहीं।
– पर पी लिया।
– तुमने कपड़े पहने?
– जी पहने।
– लेकिन तुम तो नंगे हो।
– तुमने इलाज कराया?
– करा लिया।
– लेकिन तुम तो बीमार दिखाई दे रहे हो अब्दुल शकूर।
– आप भी कमाल करते हैं...मैं बहुत खुश हूँ...लकड़ी का आदमी हूँ न....

दस

(अब्दुल शकूर का जैसा अंत हुआ वैसा काश हम सब का हो। आमीन)

अब्दुल शकूर मस्जिद में नमाज पढ़ने गया। वह नमाज पढ़ने खड़ा होने ही वाला था कि मस्जिद की एक भारी मीनार टूट कर उसके ऊपर गिरी और अब्दुल शकूर उसके नीचे कुचल कर मर गया।

मरने के बाद उसका पोस्टमार्टम किया गया है। रिपोर्ट यह आई कि मरने से पहले वह हँस रहा था।

❑❑❑

तीन तलाक

– मैं तीन तलाक और बुर्के का विरोधी हूँ।

– मैं भी हूँ। पर आप तीन तलाक और बुर्के के क्यों विरोधी है?

– इसलिए विरोधी हूँ कि मैं मुस्लिम महिलाओं का भला चाहता हूँ। तीन तलाक और पर्दा मुस्लिम महिलाओं का शोषण है। उनके लिए अमानवीय है ।

– आप मुस्लिम महिलाओं के प्रति बहुत संवेदनशील हैं।

– हाँ हूँ। इसमें क्या बुराई है।

– बड़ी अच्छी बात है। यह बताइए आदिवासी और दलित महिलाओं के प्रति भी आपके मन में संवेदना है, सहानुभूति है ?

– हाँ है।

– तो आप उनके लिए क्या करते हैं?

– जब तक वे बुर्का नहीं पहनने लगेंगी और उनके समाज में तीन तलाक नहीं होने लगेगी तब तक मैं क्या कर सकता हूँ ?

आवाज़ का जादू

कुछ पुरानी बात है मंदिर और मस्जिद में एक अजीब तरह का कॉम्पिटीशन शुरु हो गया था। यह लाउड स्पीकर की आवाज़ के बारे में था। मंदिर वाले और मस्जिद वाले एक–से–एक बड़ा लाउड स्पीकर लगा रहे थे। और यह चाहते थे कि उनके लाउड स्पीकर की आवाज़ दूसरे के लाउड स्पीकर की आवाज़ से तेज हो जाए और ज्यादा दूर तक जाए, ज्यादा लोग सुनें। कॉम्पिटीशन बढ़ता चला गया। मंदिर वालों ने अमेरिका से इंजीनियर बुलाए और मंदिर पर एक बहुत बड़ा लाउड स्पीकर लगवाया। मस्जिद वाले रूस से इंजीनियर लाए और मंदिर पर लगे लाउड स्पीकर से बड़ा लाउड स्पीकर बनवाया। यह होता रहा। लाउड स्पीकरों की आवाजें.बढती रही। और इतनी बढ़ गई की मंदिर और मस्जिद में जब एक साथ लाउड स्पीकर पर भजन गाए गए और अजाघ्न दी गई तो आवाज़ इतनी तेज थी कि सब सुनने वाले के कान फट गए। भजन गाने वालों और अजान देने वालों के कान भी फट गए।

फिर यह हुआ कि मंदिर और मस्जिद से आने वाली आवाजें.किसी को न सुनाई देती थी क्योंकि सब के कान फट चुके थे।

पर भजन होते रहे। अजानें होती रहीं...

यह आज तक जारी है।

दुश्मन–दोस्त

एक

– तुम हमारे दुश्मन हो ?
– बिल्कुल नहीं।
– हाँ भी, नहीं हो ?
– नहीं जी मैं भी नहीं हूँ
– कभी थे?
– नहीं जी।
– कभी नहीं होगे ?
– कभी नहीं होंगे।
– किसकी कसम खाकर कह सकते हो?
– जिसकी आप कहें।
– ठीक है तो तुम हमारे साथ हो।
– हाँ मैं, आपके साथ हूँ।
– पूरी तरह साथ हो।
– हां पूरी तरह साथ।
– मेरे विचारों से सहमत हो?
– हम आपके विचारों सहमत हैं।
– मेरे सभी विचारों से सहमत हो?
– हाँ आपके सभी विचार से सहमत हूँ।
– हमारे सभी कामों से सहमत हो ?
– हाँ आप के सभी कामों से सहमत हूँ।
– हमने आज तक जो भी किया है उससे सहमत हो?
– हाँ आपने आज तक जो भी किया है उससे सहमत हूँ।
– हम जो भी करेंगे उससे तुम सहमत होगे?
– हाँ, आप जो भी करेंगे उस से मैं सहमत हूँगा।
– हम जो नहीं करेंगे उससे भी तुम सहमत होगे?

– हां आप जो नहीं करेंगे उससे भी हम सहमत होंगे।
– नहीं तुम हम से सहमत नहीं हो।
– यह आप कैसे कह सकते हैं।
– हम जो चाहें कह सकते हैं... हमसे सहमत नही हो ?
– नहीं नहीं ऐसा कैसे हो सकता है मैं आपसे सहमत हूँ।
– तो तुम हमसे सहमत नहीं हो।
– जी...।
– तुम हमारे विरोधी हो।
– जी...।
– तुम हमारे शत्रु हो।
– जी...।
– तुम हमारे पक्के शत्रु हो।
– जी...।
– तुम्हारे कारण ही देश की सारी समस्याएं हैं।
– जी....
– तुम न रहोगे तो यह सारी समस्याएं दूर हो जाएगी।
– जी...।
– पर तुमको रहना पड़ेगा।
– जी क्या कह रहे हैं... रहना पड़ेगा।
– हाँ रहना पड़ेगा।
– जी, समझा नहीं।
– तुमको रहना पड़ेगा।
– ठीक है जी...पर मैं समझा नहीं।
– नहीं तुम न समझ पाओगे। तुम बस मान लो कि तुम हमारे दुश्मन हो।
– जी।
– सदा थे, हो और रहोगे।
– जी...पर क्यों?
– इसलिए कि तुम हमारे दुश्मन न रहे तो हम न रहेंगे...

दो

– सुनो।
– कहो।
– तुम हमारे दुश्मन ही बने रहो।
– दोस्त क्यों न बनूं।
– दुश्मन का रिश्ता आसान है।
– और दोस्त का रिश्ता।
– बहुत मुश्किल है।
– कैसे?
– दुश्मन को मार देना आसान है।
– और दोस्त।
– दोस्त से दोस्ती निभाना मुश्किल है।

तीन

– सुनो।
– कहो।
– तुम हमारे दुश्मन ही बने रहो।
– क्यों?
– ताकि हम डरते रहें।
– डरने से क्या फायदा होगा।
– डरने के फायदे ही फायदे हैं।
– क्या फायदे हैं।
– सबसे बड़ा फायदा बताऊँ।
– हाँ बताओ।
– सबसे बड़ा फायदा है, हम जब तक डरते नहीं तब तक एक दूसरे का हाथ नहीं पकड़ते।

चार

– सुनो।
– कहो।
– तुम हमारे दुश्मन ही बने रहो।
– क्यों।
– उससे हमें गुस्सा आता है।
– गुस्सा आने से क्या फायदा होता है।
– गुस्सा आने के फायदे फायदे हैं।
– क्या फायदे हैं।
– गुस्सा उसने से हमारे हाथ पर चलते रहते हैं, खाना पचता रहता है, रक्तचाप सही रहता है और हम बाकी सब भूले रहते हैं।

पांच

– हमारे दुश्मन, तुम अपने बारे में जो सोचते हो वह सही है?
– जी, सही है।
– ये तुम्हे किसने बताया कि तुम अपने बारे में जो सोचते हो वह सही है?
– जी, किसी ने नहीं।
– तब तो वह गलत है।
– क्यों?
– क्योंकि तुम अपने बारे में सही नहीं जानते।
– फिर कौन हमारे बारे में सही जानता है।
– हम...इसलिये तुम अपने बारे में जो कहते हो वह सच नहीं है।
– फिर हमारे बारे में सच क्या है?
– जो हम कहते हैं।

❑❑❑

दूसरी मिस्टेक

मंटो बड़े ज़बरदस्त कहानीकार थे। मिस्टेक मंटो की लिखी हुई कहानी है। हिन्दू-मुस्लिम दंगों के दौरान एक आदमी किसी की हत्या कर देता है। हत्या करने के बाद पता चलता है कि जिसकी हत्या की गई उसका धर्म और हत्या करने वाले का धर्म एक ही है। यह जानकारी मिलने पर हत्यारा कहता है 'मिस्टेक' हो गई।

'मिस्टेक' आजकल भी हो जाती है और इसी 'मिस्टेक' को ठीक करने के लिए अलग-अलग धर्मों के 'सच्चे और ईमानदार' लोगों का एक डेलीगेशन ऊपर गया।

उन्होंने ऊपर वाले से कहा-तू सब जानता है। तू सब कर सकता है। तू सबका स्वामी है। तू हमारी सहायता कर।

ऊपर वाले ने कहा- क्या चाहते हो?

नीचे वालों ने कहा- आपको तो सबके दिल का हाल मालूम है। क्या आप यह नहीं बता सकते कि हम आपके पास क्यों आए हैं?

ऊपर वाले ने कहा-तुम लागों के दिल का हाल मैं नहीं जानता। वह केवल शैतान जानता है। तो तुम मुझे बताओ कि क्या चाहते हो?

नीचे वालों ने कहा-हम चाहते हैं कि हमें आदमी को मारने से पहले उसका धर्म पता चल जाए। आपसे विनती है कि कुछ ऐसा कर दें।

ऊपर वाले ने कहा-ठीक है जाओ तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

ऊपर वाले का करना कुछ ऐसा हुआ कि अब जो बच्चे पैदा होते हैं उनके माथे पर उनका धर्म लिखा होता है। पैदा हुए बच्चे को अगर किसी दूसरे धर्म का प्रतीक दिखा दिया जाता है तो वह चीखने और चिल्लाने लगता है। अपने धर्म का झंडा देख लेता है तो किलकारी मारने लगता है। बच्चे पहला शब्द 'माँ' नहीं बोलते गाली सीखते हैं। उनके हाथ खिलौनों की तरफ नहीं हथियारों की तरफ जाते हैं। उनकी आँखों में घृणा और बदला लेने की भावना के अलावा कोई और भावना नहीं दिखाई पड़ती।

ऐसे 'धर्मप्रेमी' लोगों को देखने एक दिन मंटो नरक से धरती पर आ गए। उन्होंने कहा-कहानी तो मैं अब लिखूंगा।' मंटो कहानी लिख ही रहे थे कि किसी ने चाकू घोंप कर उन्हें मार डाला और बोला- 'मिस्टेक' नहीं हुई।

❑❑❑

खतरा

एक देश की सीमाओं पर बड़ा खतरा था। चारों तरफ से शत्रुओं ने घेर रखा था। देश की सेना को सीमाओं पर भेजा गया। सेना ने बड़ी बहादुरी से दुश्मनों का सामना किया। उनको हरा दिया और दूर तक खदेड़ दिया। दुश्मन को पराजित करने के बाद सेना जब देश को लौटी तो सेना ने देखा कि देश में कोई नहीं है। सेना को बड़ा आश्चर्य हुआ कि देशवासी कहां चले गए जिनके लिए उन्होंने बड़े-बड़े युद्ध लड़े थे। खोजते-खोजते सेना को दो देशवासी मिले जो आपस में एक दूसरे से खूनी लड़ाई लड़ रहे थे। सेना ने उनको अलग किया और पूछा-तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ?

उन्होंने कहा-हम दोनों एक दूसरे के दुश्मन हैं। उस समय तक लड़ते रहेंगे जब तक जिंदा हैं।

सेना ने कहा-बाकी लोग कहां चले गए?

उन्होंने बताया, बाकी लोग भी एक दूसरे के खून के प्यासे थे। वे आपस में लड़ते रहे, लड़ते रहे, लड़ते रहे और सब लड़ते-लड़ते मर गए।

इतना कह कर वे दोनों फिर लड़ने लगे।

❑❑❑

फैसला

वकील–मी लार्ड सारे सबूत इसके खिलाफ जाते हैं। गवाहों के बयान भी इसे अपराधी साबित करते हैं। इसने हत्या जैसा जघन्य अपराध किया है। यह समाज का कलंक है। इंसानियत के ऊपर धब्बा है। इसने पूरे समाज को, पूरी मानवता को कलंकित किया है। यह कातिल है। इसे सजा दी जाए। फैसला सुनाइये मी लार्ड।

जज–पहले यह बताओ कि यह हिंदू है या मुसलमान?

❑❑❑

परिशिष्ट

किसी भी कलाकार को रंगों की तलाश करते रहना चाहिए

कथाकार असग़र वजाहत से पल्लव की बातचीत

आपको कुछ अरसा पहले राजस्थान की पुरानी और प्रसिद्ध लघु पत्रिका 'संबोधन' की तरफ से एक सम्मान दिया गया है 'आचार्य निरंजन नाथ सम्मान', बातचीत शुरू हो इसलिए मैं यह सवाल पूछ रहा हूं कि इस तरह का सम्मान या पुरस्कार पा कर आपको कैसा लगता है?

देखिए ऐसा है कि संस्थाएं दो प्रकार के सम्मान देती हैं। कुछ संस्थाओं के लिए सम्मान देना एक पेशे सा बन गया है जिसकी समझ में कुछ नहीं आता है वो सम्मान दे देता है। क्या करें, क्या न करें जब कुछ समझ में नहीं आत तब संस्थाओं को लगता है कि लाओ एक सम्मान ही दे दें। कुछ लेखक ऐसे भी हैं जिन्हें उनकी प्रकाशित पुस्तकों से अधिक सम्मान मिल गये हैं। सम्मान देने का उद्देश्य क्या है? सम्मान हमारे यहां क्यों देते हैं? सम्मान देने वाले और उनके साथी जो रचनाकार से परिचित होते हैं, पर पूरी जानकारी नहीं रखते, कहते हैं, हां, भाई हैं, उन्होंने लिखा है अवार्ड दे दो। एक तो दरअसल ऐसे लोग हैं जिन्होंने एक मखौल सा या एक अवसर जहां जनसंपर्क हो सकता है, जहां उनका नाम हो सकता है, जहां संस्था की या लोगों की प्रतिष्ठा हो सकती है उसको ध्यान में रख कर अवार्ड देते हैं। मैं तो यह भी सोच रहा हूं कि जो सम्मान मुझे मिले हैं उन पर कोई कहानी लिख दूं। इसमें कोई शक नहीं है कि बहुत से सम्मान बहुत अच्छी संस्थाओं ने दिएए ईमानदारी से दिए। लेकिन बहुत सी ऐसी संस्थाएं रही हैं जिन्होंने इस तरह से सम्मान दिए कि जो एक नाटक या तमाशा बन गया। उसके बहुत से उदाहरण हैं। एक दो बड़े रोचक उदाहरण हैं। एक संस्था ने सम्मान दिया। वहां दो राज्यपाल मंच पर मौजूद थे। सम्मान ले कर जब मैं मंच से उतरा तो एक मित्र ने कहा जरा चेक को देख लीजिए। मैंने कहा उसमें क्या देखना एक चेक में क्या देखना। उन्होंने कहा, फिर भी नजर डाल लीजिए कोई नुकसान नहीं है। मैंने उस चेक को देखा तो उसमें जो राशि लिखी थी, वह अंकों में दूसरी थी और शब्दों में दूसरी थी। मतलब यह कि चेक कैश नहीं हो सकता था। चेक पर संस्था के अध्यक्ष, महामंत्री और कोषाध्यक्ष तीनों के हस्ताक्षर थे और मोहर थी । इसका मतलब था यह चेक अच्छी तरह देखा गया था। दिक्कत ये थी कि तब मैं विदेश में था और अपना पैसा खर्च करके सम्मान लेने आया था और यह सोचा था कि सम्मान की राशि से ही किराया निकल आएगा। संस्था के जो कर्ता-धर्ता थे, महामंत्री थे, वे मंच पर दो राज्यपालों के साथ बैठे हुए थे। अब समस्या यह थी कि उनसे कैसे

कहें। खैर! मौका मिला तो मैंने कहा तो उन्होंने लापरवाही से कहा अरे, अरे, आप चिन्ता मत कीजिए राजभवन में पार्टी है न। डिनर में ही सब हो जाएगा। मसला हल हो जाएगा। खैर राजभवन पहुंचे। अब राजभवन में तो यह बात किसी के सामने कह नहीं सकते कि यह मसला क्या है। बड़ी मुश्किल से मौका मिला, उनको अकेले में बुला कर कहा कि भाई ये समस्या है। उन्होंने कहा–अरे, कोई बात नहीं। आपको दूसरा कल दे देंगे। चेक मुझे दे दीजिए। उन्होंने चेक लेकर अपनी जेब में डाल और कहा कि चेक तो वैसे भी आपको नहीं चाहिए। मैंने कहा क्या मतलब? कहने लगे, आपको तो कैश चाहिए न! कल आपको कैश दे देंगे। अगले दिन उन्होंने बहुत ही संवेदनशील कवि पर संगोष्ठी रखी थी और उस पर चर्चा हो रही थी। मौका निकाल कर मैंने उनसे कहा–शाम को मेरी ट्रेन है, कहने लगे–'हां–हां, हो जाएगा। वैसे आज तो शनिवार है, बारह बज गये हैं बैंक तो बंद हो गया है। नहीं–नहीं, आप उसकी फिक्र मत कीजिए।' शाम होते–होते एक वे परचूनी लिफाफा (जिसे बच्चों की इस्तेमाल की हुई कोपियों से बनाया जाता है, छोटे कस्बों में चलता है) ले आये। उन्होंने एक काफी बड़ा लिफाफा ला के पकड़ा दिया और कहा कि साब ये आप की अमानत है। अब मैं न तो उसे खोल सकता था और न देख सकता था क्योंकि बहुत से लोगों के सामने मुझे लिफाफा दिया गया था। लेकिन जब घर आकर उसको देखा तो जो शक था निराधार साबित हुआ उसमें पूरे पैसे थे। इसी तरह की अनेक घटनाएं हैं। एक दूसरी संस्था ने और कहा कि हम आपको सम्मान देना चाहते हैं। मैंने कहा आप किसी राजनेता को मत बुलाइयेगा। ठीक है राजनेता को नहीं बुलायेंगे। लखनऊ के एक बहुत ही वरिष्ठ लेखक कृष्ण कुमार कक्कड़ जो रघुवीर सहाय के दोस्त थे उन्हें बुलाया जायेगा। समारोह में मैं और कक्कड़ जी मंच पर बैठे थे। मैंने देखा कि सामने से एक मोटा सा आदमी गोल–मटोल, सफेद कुर्ता पजामा पहने, एक हाथ में दो–दो मोबाइल लिए, एक हाथ में पान पराग का डिब्बा पकड़े तेजी से मंच की तरफ आ रहा है। उसके पीछे उसके चार–पांच चमचे धड़ाधड़ करते चले आ रहे थे। मैंने पूछा ये कौन लोग हैं? बताया गया ये उप राज्य मंत्री खेल कूद हैं। मैंने आयोजक से कहा कि मैंने तो आपको मना किया था कि किसी राजनेता को न बुलाइयेगा। उन्होने उत्तर दिया, अरे! नहीं–नहीं, ये आपको सम्मान देने थोड़े आये हैं ये तो स्कूल में बच्चों को अवार्ड देने आये हैं जिनकी कुछ प्रतियोगिताएं हमने करायीं थीं। नेता जी मंच पर बैठ गये। जब मेरे नाम की घोषणा हुई तब बूढ़े कक्कड़ जी को खड़े होने में देर लगी और ये नेता जी तुरंत उठ कर खड़े हुएए इससे पहले की कक्कड़ जी कुछ करते नेता ने शाल को झपट लिया और मुझे ओढ़ा दिया। जाहिर सी बात थी कि मंच के ऊपर आप किसी को मना भी नही कर सकते हैं कि नहीं साब आप ऐसा मत कीजिए। बरहाल आधी चीजें नेता जी के हाथ में आयीं और आधी कक्कड़ जी के। मुझे दोनों ने ही सम्मानित कर दिया। अगले दिन अख़बार में नेता जी द्वारा सम्मानित करने की ख़बर ही छपी। इस तरह के हादसे हुए। लेकिन मुझे लगता है कि सम्मान

देने के पीछे जो भावना है और जो मुख्य उद्देश्य है, वह खत्म होता जा रहा है, कम होता जा रहा है। मैंने कई बार सोचा कि ऐसा सम्मान क्यों नहीं होता कि लेखक की बीस हजार-पचास हजार की किताबें खरीद कर पुस्तकालयों को दे दी जाएं। इससे बड़ा सम्मान लेखक के लिए और क्या हो सकता है कि उसकी किताबें लोग पढ़ें। लेकिन ऐसा करने में कोई ग्लैमर नहीं है। और समस्या ये है कि अवार्ड ग्लैमर की चीज़ बन गये हैं। ये भी अवार्ड हो सकता है कि संस्थाएं लेखक को यह आफर करें कि उन्हें रचनात्मक काम करने के लिए स्कालरशिप या रेजिडेंसी दी जायेगी। आपका खर्चा हम उठायेंगे, आप वहां बैठ के कोई उपन्यास लीखिए। या अवार्ड देने वाली संस्था कहे कि आपको सम्मान यह दे रहे हैं कि आपको चीन की यात्रा पर भेज देते हैं। आप चीन की यात्रा करके आईये, कैसा समाज है? कैसे लोग हैं? इस पर एक पुस्तक लिखिए। लेकिन क्योंकि इन सब चीजों में कोई दिखावा नही है इसलिए ऐसा नहीं किया जा सकता। हमारे देश का प्रदर्शनकारी स्वभाव बन गया है। हमारे देश का स्वभाव यह है कि फूल सजे हों, मंच बना हुआ हो कुर्सीयों पर लाल रंग के गद्दे लगे हों, कैमरे लगे हों तीन चार। उसके बाद दस-पांच लोग मंच पर आयें-जायें। कुछ दें लें एक दर्जन लोग तो माल्यार्पण के लिए हों। पन्द्रह आदमी माला पहनने के लिए हों, दो-चार सौ आदमी ताली बजाने के लिए हों। तब कहीं बात बनती है। सम्मान देने के पीछे जो रचना को बढ़ावा देने और रचनाकार को प्रेरित करने और उसको अवसर देने के जो उद्देश्य थे,वो कम होते जा रहे हैं। सरकारी सम्मान भी इसी तरह के हो गये हैं। आपका इन्टलेक्चुअल डवलपमेंट कितना हो सकता है? आप की रचनाएं उससे कैसे लोगों तक पहुंच सकती हैं? इनका अवार्ड से कोई संबंध नहीं रह गया।

आप कांकरोली गये थे, इसी से जुड़ी हुई एक ओर बात पूछूंगा। राजस्थान से कोई कभी किसी तरह का संबंध रहा है आपका?

राजस्थान से कोई गहरा संबंध तो नहीं रहा लेकिन हमारे दोस्त स्वर्गीय ओम श्रीवास्तव की संस्था में अक्सर जाना होता था। अनिल चौधरी उनके बड़े मित्र थे। ओमजी एक बड़ा एनजीओ चलाते थे उन्होंने राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया है। कुछ फ़िल्में भी बनवाई थी, जिस संदर्भ में राजस्थान के आदिवासी क्षेत्रों से संपर्क हुआ था।

आप के चार-पांच यात्रा आख्यान आ गये हैं। उनमें जो सबसे नया है वह पूर्वोत्तर भारत की यात्राओं पर केन्द्रित है। क्या आपका यह मन नहीं है कि आप राजस्थान के क्षेत्रों का भ्रमण करें और वहां के गांवों के बारे में, वहां के लोगों के बारे में लिखें।

देखिए अब में विश्वास करने लगा हूं कि गहन यात्रा मतलब सोशल टुरिज्म होना चाहिए। कहीं जा कर सिर्फ जगहों को देखनाए पर्याप्त नहीं है। अगर कोई आप ऐसा प्रोग्राम बनाये- जैसे महीने भर के लिए किसी एक इलाके में घूमना हो जैसे आपका शेखावटी

इलाका है या मान लीजिए की आपका अपना इलाका है, वहां जा कर देखना समझना है, उसके लिए मैं तैयार हूं। वहां कस्बे में या गांव में लोगों के साथ बातचीत हो। उनके बारे में, उनकी जिन्दगी के बारे में, उनके माहौल के बारे में, जानकारियां मिलें। वर्तमान को इतिहास से जोड़कर देखा जाए और उसका विश्लेषण किया जाए–तब तो उसका मजा है। घूमना या केवल देखने का कोई मतलब नहीं है। अगर इन गर्मियों में योरोप न जाता तो तब तो ये प्लान बना रहा था कि किर्गिस्तान में एक महीने,दो छोटे–छोटे कस्बे हैं जो सिल्क रूट पर पड़ते हैं और बहुत ही प्राचीन कस्बे हैं, वहां जाकर पन्द्रह–पन्द्रह दिन रहूं। भाषा की कोई समस्या नहीं होती, जो दृश्य आपको बताता है, वह इतना काफी होता है कि भाषा की जरूरत आपको नही पड़ती है। किसी भी समाज को किसी भी समूह को देखने समझने के लिए अगर वहां पर आप हैं और आपका ऑबजरवेशन अच्छा है तो आप समाज को समझ सकते हैं। ऐसी किसी सघन यात्रा का कोई कार्यक्रम बनाइये।

मैं अब दूसरी तरह के सवाल पर आता हूं। साम्प्रदायिकता को आमतौर पर भूख और गरीबी के सवाल से जोड़कर देखा जाता है। गुजरात ने हमारा ये भ्रम तोड़ा। हमने देखा कि पढ़े–लिखे लोग भी उसमें शामिल थे। आप इस पूरी समस्या को किस तरह से समझते हैं? क्योंकि आपके बारे में हम सब लोग यह मानते हैं कि आप हिन्दी के उन कुछ रचनाकारों में से हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में लगातार इस सवालों का सामना किया है।

देखिए हमारी एप्रोच इस समस्या के बारे में बहुत नेगेटिव है। साम्प्रदायिकता विरोध यानी साम्प्रदायिकता हो तो विरोध करें। हम लोग प्रतीक्षा करते रहें कि पहले तो साम्प्रदायिकता हो जाए, जब साम्प्रदायिकता हो जाएगी तो लोगों को इकट्ठा करेंगे। बैनर लगाएंगे,स्पीकर्स को बुलवायेंगे और भाषण करवाएंगे। हम विरोध करेंगे और अखबारों में लिखेंगे साम्प्रदायिकता के विरोध में। कहेंगे, बड़ा बुरा हुआ साब दंगा हो गया। हमने ये कोशिश क्यों नहीं की कि समाज में जो साम्प्रदायिक सोच है, साम्प्रदायिक दृष्टि है, साम्प्रदायिक रवैया है जिसके साथ हमारा प्रतिदिन आमना–सामना होता है, उसे क्यों न संबोधित किया जाए? मतलब यह है कि साम्प्रदायिकता का विरोध करने के लिए साम्प्रदायिक दंगों की प्रतीक्षा न की जाए बल्कि जीवन और समाज में व्याप्त साम्प्रदायिक धारणाओं को चुनौती दी जाए।

समाज में बहुत तरह की 'हेट कैम्पेन' चल रही है। ये बड़े स्तर पर चल रही हैं। क्या उनको हमने कभी समझने की कोशिश की है। क्या हमने यह समझने की कोशिश की है कि आदिवासियों के बारे में, दलितों के बारे में, अल्पसंख्याकों के बारे में जो ये घृणा प्रचार है वह कैसा है? कौन चलाता है? उसका क्या नतीजा निकलता है? हम जानते हैं कि योरोप में कई सौ सालों तक यहूदियों के बारे में 'हेट कैम्पेन' चलायी जाती रही थी। शेक्सपीयर के नाटक तक में यहूदी विरोध दिखायी पड़ता है। बीसवीं शताब्दी में यहूदियों को हिटलर ने

मारना शुरू किया तो पूरा योरोप खामोश रहा क्योंकि वह जो 'हेट कैम्पेन' थी अपना असर दिखा चुकी थी। गुजरात के दंगों पर केंद्रित एक फिल्म मैंने देखी है उसमें किसी एंकर ने एक घरेलू महिला से पूछा, बहिनजी ये जो सब कुछ हुआ आप क्या सोचती हैं इसके बारे में? महिला ने कहा, 'यह बहुत बुरा हुआए बहुत लोग मारे गये, यह हमें पसंद नहीं है, यह बहुत ही खराब था, फिर कहने लगी, लेकिन फिर ये बताइये भाई साहब कि फिर और करें क्या? फिर हम करते क्या?' उसके कहने का मतलब यह था कि मुसलमान ऐसे होते हैं कि उनके साथ हम यह न करते तो फिर क्या करते? ये उस हेट कैम्पेन का असर था जो लोगों के दिमागों के अंदर बैठा दिया गया था। हमारे साम्प्रदायिकता के विरोध करने वाले इस स्तर पर आ कर कुछ क्यों नहीं करते? मतलब यह है कि रोजमर्रा के जीवन में जो साम्प्रदायिकता है वह न बुद्धिजीवियों को, न सामाजिक कार्यकर्ताओं को– किसी को दिखाई नहीं देती है।

हम उसके लिये कुछ करें। हमारे यहां जामिया मिल्लिया इस्लामिया केंद्रीय विश्वविद्यालय में टीचर एसोसिएशन सभी अध्यापकों के लिए साल में एक बार बड़ा डिनर करती है। मैंने उनसे कहा, 'तुम लोग डिनर करते हो, दिल्ली में हो, कुछ ऐसे लोग जो तुम से अलग हैं या दूर हैं, उनको इस डिनर में बुला लिया करो। मान लो कि हाईकोर्ट के दस वकीलों को बुलाओ, कुछ अधिकारी हैं उनको बुलाओ, कुछ व्यापारी हैं उनको बुलाओ, कुछ आर्ट कल्चर के लोग हैं उनको बुलाओ। हर धर्म के लोगों को बुलाओ, हिन्दू हों, सिक्ख हों, ईसाई हों– सब को बुलाओ। एक वातावरण ऐसा बने कि आपसी मेलजोल और एक दूसरे को समझने की आदत पडे. उन्होंने यह आज तक नहीं किया क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता कि यह उनके लिए कितना जरूरी है। इसी तरह हमारे जो सेकूलर डेमोक्रेटिक बुद्धिजीवी साम्प्रदायिकता विरोध का काम बहुत सतही स्तर पर करते हैं, वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैली साम्प्रदायिकता को चुनौती नहीं देते। जबकि साम्प्रदायिकता फैलाने वाले लोग बहुत लगन से और काफी पैसा खर्च करके साम्प्रदायिक द्वेष और घृणा फैलाने का काम लगातार करते रहते हैं।

किसी सामान्य आदमी से बात करके देख लीजिए जिसका किसी संगठन से कोई संबंध नहीं है, किसी तरह का लेना–देना नही हैं, दसवीं बात में वह कह देगा कि किसी खास सम्प्रदाय के बारे में या किसी जाति के बारे में उसके अच्छे विचार नहीं हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता के उद्भव और प्रसार के कौन–कौन से कारण आप देखते हैं।

देखिए सबसे बड़ी चीज यह है कि जब संख्या के आधार पर सत्ता स्थापित होने लगी अर्थात् बहुमत के आधार पर लोकतंत्र बन गया तो प्रश्न यह उत्पन्न हुआ कि आप बहुमत को किस प्रकार आकर्षित कर सकते हैं। बहुमत को आकर्षित करने के दो–तीन तरीके हैं। एक तो यह कि जनहित में काम किया जाए। सेवा का काम किया जाए। पर सेवा

करना सरल नहीं है। सेवा के आधार पर जो जनाधार बनता है वह पक्का तो अवश्य होता है पर उसके बनने में समय लग जाता है। सबसे आसान तरीका यह है कि हम धर्म के नाम पर जनमत बना दें, जाति के नाम पर उनको आकर्षित करें। जाति और धर्म के आधार पर लोगों को एकजुट करने के लिये यह किया जाता है कि उनके अंदर भय पैदा कराया जाता है। जैसे मुसलमान बच्चे बहुत पैदा कर रहे हैं और एक समय ऐसा आयेगा जिस समय मुसलमान देश में बहुसंख्यक हो जाएंगें। मुसलमानों के अंदर यह भय पैदा किया जाता है कि देखो ये हिन्दू तुम्हें छोड़ेंगे नहीं। तुम्हारे मुस्लिम पर्सनल ला को ये खत्म कर देंगे। दोनों धर्मों के नेताओं ने दोनों समूहों के अंदर भय और एक दूसरे के प्रति अविश्वास उत्पन्न करके उनका समर्थन प्राप्त किया। उनके अंदर दीवार उठाई वोट लेने के लिए। अगर गुजरात में साम्प्रदायिक दंगे न हुए होते तो नरेन्द्र मोदी शायद लम्बे समय तक मुख्यमंत्री नहीं बने रह सकते थे। मोदी की सबसे बड़ी सफलता यह है कि साम्प्रदायिक दंगो को वृहतर जनता के हित से जोड़ते हुए उन्होंने विकास के एजेण्डे को लागू किया। उन्होंने समुदायों के बीच अविश्वास को और अधिक बढा दिया और इस तरह हिन्दू वोटों का ध्रुवीकरण करके सत्ता में बने रहे। तो कहने का मतलब यह है कि हमारे नेताओं ने जिस प्रकार से धर्म को इस्तेमाल किया है उससे साम्प्रदायिकता बढी है। दूसरी ओर शिक्षा और जागरूकता के प्रति देश के नेताओं को जो चिन्ता होनी चाहिये थी वो रही नहीं। क्योंकि उन्हें धर्मांधता को फैलाना ही हितकर लगा।

हमारे देश में इस तरह की समस्याओं के बारे में एक बड़ा सरलीकरण यह है कि अंग्रेजों ने यह सब किया था। साम्प्रदायिकता को लेकर भी यह माना जाता है कि यह अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजों को इसके लिए गुनहगार ठहराना कहा तक न्यायसंगत है।

आप अंग्रेज क्यों कहते हैं? यह कहिये कि साम्राज्यवादी शासकों की नीतियां – 'बांटों और शासन करो' होती हैं। साम्राज्यवादी विश्वास करते हैं कि किसी भी कीमत पर अपना हित साधना है। वह चाहे जाति के नाम पर सधे या चाहे धर्म के नाम पर सधे। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुस्लिम आबादी को अपने हित में बांटा था, जरूर बांटा था। लेकिन अंग्रेजों ने ऐसे स्कूल भी खोले जहां आदिवासी, दलित और ब्राह्मण और मुसलमान एक साथ बैठ कर पढ़ते थे। ये भारत जैसे समाज में कोई छोटी बात नहीं थी! उन्होंने भारत जैसे समाज में एक ऐसी सेना बनाई थी जो एक मेज पर बैठ कर खाना खाती थी, जिसमें हर जाति के लोग थे खाना एक जगह बनता था, यह कोई छोटी बात नही थी, बड़ी बात थी। तो दोनों भूमिकाओ में साम्राज्यवाद ने जहां अपने हित देखे उस प्रकार से काम किया। ये साम्राज्यवादी नीतियां हमारे देश में रहीं। इन्होंने अंततः यह देखा कि भारत को अब छोड़ना ही पड़ेगा इसलिए कांग्रेस और भारत को कमजोर करने लिए उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम कार्ड खेलना शुरू किया था। सवाल यह है कि आपका जो शत्रु है वह आपके विरोध में रहेगा ही रहेगा आप स्वयं क्यों हैं।? अंग्रेजों को लगा कि साम्प्रदायिकता से भला होगा लेकिन अब आप क्यों

साम्प्रदायिक हैं? अब तो अंग्रेज नहीं हैं। अंग्रेज जिस चीज से लाभ उठा रहा था आप भी उसी चीज से लाभ उठा रहे हैं? यानी आप भी उतने ही साम्राज्यवादी हैं जितने साम्राज्यवादी अंग्रेज थे। अगर आप आजादी के बाद भारतीय समाज को आप बहुत गहराई से देखेंगे तो पायेंगे कि यह हमारी आजादी साम्राज्यवाद का विस्तार है। आजादी के बाद भारतीय कम्युनिस्ट कहते थे कि ये आजादी झूठी है देश की जनता भूखी है। अब लगता है शायद वो सच था। फिर मजेदार बात है कि जिस आजादी के लिए आप लड़े वह भारतीय कोन्सेप्ट नहीं है। हमारे समाज में, हमारे इतिहास में, हमारे देश में आजादी नाम की कोई चीज नहीं थी। आधुनिक और राजनीतिक आजादी योरोप की देन है। हमारे देश में तो सामंतवाद था जिसमें कोई आजादी नहीं थी।

यही बात तो धर्मनिरपेक्षता के लिए की जाती है कि धर्मनिरपेक्षता जैसा हमारा कान्सेप्ट है ही नही। हमारा देश तो धर्म प्राण देश है। हमारे देश में तो हर कंकड़ में ईश्वर बसता है इत्यादि इत्यादि। तो इसका क्या जवाब है?

धर्म के प्रति निष्ठा होने और साम्प्रदायिक होने में बहुत अंतर है। किसी भी धर्म को मानने वाला अपने धार्मिक विश्वासों पर अडिग रहते हुए जनहित में काम कर सकता है। लेकिन साम्प्रदायिक व्यक्ति या समूहों जो धर्म के नाम पर राजनीति करते हैं वे जनविरोधी काम करते हैं।

साम्प्रदायिकता को हम मोटे तौर पर हिन्दी पट्टी की समस्या के रूप में जानते हैं। हिन्दी पट्टी के इलाके में यह समस्या जितनी व्यापक है शायद उतनी गैर हिन्दी भाषी प्रांतों में नही होगी। आप हिन्दी पट्टी की पतनशीलता को 1857 की विफलता से जोड़ते हैं। आपको याद हो तो 'साक्षात्कार' नाम की पत्रिका में छपे एक इंटरव्यू में आपने यह कहा भी था। क्या इस पतनशीलता को 1857 की हार के साथ जोड़कर देखना उचित है।

देखिए 1857 का संघर्ष बहुआयामी था। उत्तर-भारत के लोग साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ रहे थे और सांमतवाद के पक्ष में थे। साम्राज्यवाद सामंतवाद का अगला कदम है लेकिन हम प्रतिगामी शक्तियों के साथ थे। पर हम पराजित हो गये और 1857 के बाद हिन्दी क्षेत्र का सबसे ज्यादा नुकसान हुआ। सबसे अधिक अत्याचार और दमन हिन्दी प्रदेशों में किया गया क्योंकि मुख्य रूप से वे आन्दोलन का केन्द्र थे। लेकिन दूसरी ओर समुद्र तट पर जो नगर बसे थे वहां नये-नये उद्योग धंधे और व्यापार शुरू हुए। बम्बई, मद्रास, कोचीन, कलकत्ता आदि इलाकों में 1857 के बाद नयी जागृति दिखाई पड़ती है जबकि हिन्दी पट्टी में निराशा और हताशा के कारण दुराशा नज़र आती है। इस हताशा में आप देखेंगे कि मुस्लिम समुदाय इस हताशा में अधिक डूबा हुआ था। इसीलिए कि अंग्रेजों का प्रमुख विरोध उन्होंने ही किया था। इस स्थिति में मुस्लिम समुदाय बहुत पिछड़ता चला गया जिसको बाद में सर सैयद ने थोड़ा आगे बढ़ाने की कोशिश की थी पर उनका भी एजेंडा

बहुत सीमित था।

एक दूसरी इसी से जुड़ी हुई बात है कि भक्ति आन्दोलन है वो इसी हिन्दी पट्टी में फला फूला और उसके बड़े–बड़े कवि इस पट्टी में हुए। इसकी परिणति रीतिकाल में जाकर होती है। तो सवाल यह है कि धर्म से जुड़ी हुई जो भी कलाएं हैं, जो भी आन्दोलन हैं अंततः उनका प्रतिगामी होना लाजमी है। इतना महान भक्ति आन्दोलन और आपने अंत में क्या पाया?

देखिए हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहीं लिखा है कि जिन्होंने कूड़े का एक ढेर साफ करने की कोशिश की थी उनके नाम पर कूडे.के तीन ढेर और लगा दिये गये। मतलब धर्म की दिक्कत यह है कि उसके आधार पर लेखन चाहे कितना भी बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दें, लेकिन अन्ततोगत्वा उसकी परिणति परिवर्तन में नहीं पायेंगे। भले ही सुधार आप थोड़ा सा कर दें।

अब आपकी कहानियों पर आता हूं। गुजरात के हादसे या गुजरात के कांड के बाद आपकी किताब आई। हमने देखा कि कुछ नई कुछ पुरानी कहानियां आपने जो साम्प्रदायिकता के विरोध में लिखी थीं। उनको आपने इकट्ठा कर एक किताब की शक्ल दी। किताब का आइडिया कैसे आया? ये किताब आपको जरूरी क्यों लगी?

यह कोई सोची–समझी बात नहीं थी। साम्प्रदायिकता की समस्या पर मैं बहुत पहले से कहानियां लिख रहा था। यह संग्रह केवल साम्प्रदायिकता पर केंद्रित कहानियों का ही नहीं है।

प्रेमचन्द से लगाकर आप एकदम नये आप या नीलाक्षी सिंह तक की कहानियां देखें तो हिन्दी कहानी अपने चरित्र में साम्प्रदायिकता विरोधी रही है। कमोबेश हर कहानीकार ने साम्प्रदायिकता का विरोध किया है। हिन्दी कहानी का यह चरित्र अपने आप में क्या एक प्रतिरोधी चरित्र नहीं है?

बिल्कुल है। किसी भी प्रकार की कलात्मक साहित्यिक अभिव्यक्ति मनुष्य विरोधी नहीं हो सकती क्योंकि वह मनुष्य से ही प्रेरणा लेती है। इसलिए वह समाज विरोधी हो जाए, मनुष्य विरोधी हो जाए शायद यह मुश्किल है, बहुत कठिन है। हिन्दी कहानी साम्राज्यवाद विरोधी है। साम्प्रदायिकता विरोधी है और आप देखेंगे कि यह व्यक्ति की आजादी की कहानी है। सामाजिक मूल्यों की कहानी है। अग्रगामी मूल्यों को सामने लाने वाली कहानी है। यह समझिये कि यह एक विश्व ऐजेंडा है। विश्व ऐजेंडे के समकक्ष हिन्दी साहित्य लिखा जा रहा है।

'मैं हिन्दू हूं' कहानी का नायक या पात्र सैफू क्या जाना पहचाना नहीं लगता? ऐसा लगता है जैसे मंटो की कहानी टोबा टेक सिंह का टोबा टेक सिंह खुद निकल कर वहां पर आ गया है। इस यात्रा को दुख भरी यात्रा या विडम्बना नहीं कहेंगे।

ये कहानी एक बिल्कुल वास्तविक घटना पर आधारित है। मतलब यह कि इसमें कल्पना का कोई तत्व शामिल नहीं है। यह घटना मुझे किसी ने बताई थी कोई पच्चीस–तीस साल पहले अलीगढ़ के दंगों के बारे में। आप यह जानते हैं कि बहुत सारी चीजें दिमाग में पड़ी रहती हैं–पड़ी रहती हैं और अचानक आपके ध्यान में आता है अरे! यह तो कहानी है या यह तो कविता है। इस कहानी के बारे में यह बताना है कि बहुत से लोग इस कहानी को गलत समझे। सैफू चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, सत्ता के सामने एक निम्न किस्म का इन्सान है जिसको सत्ता पीट सकती है। उसके हिन्दू या मुसलमान होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। दूसरा पक्ष यह है कि वह अपने आपको कह रहा है कि मैं हिन्दू हूं। उसको कितना बड़ा विश्वास है या लोगों ने ये विश्वास दिला दिया है कि अगर तू हिन्दू है तो सत्ता तेरे साथ है। जबकि उसको यह नहीं मालूम है कि सत्ता हिन्दू के साथ भी नहीं है। सत्ता हर उस कमजोर आदमी को दंडित कर सकती है। जो उसके आगे छोटा है, कमजोर है। उसको कोई फर्क नही पड़ता है। बहुत से लोगों ने अनजाने में यह अर्थ लगाया कि यह हिन्दुओं के ऊपर किसी किस्म का आरोप है। प्रकाशक ने किताब का कवर ऐसा छाप दिया कि उससे गलत संदेश जाने लगा।

एक पुरानी कहानी है आपकी 'अपनी–अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास', जो जटिल मध्यम वर्गीय मर्द मानसिकता का उद्घाटन करती है। उस कहानी का इस संचयन में आने का क्या मैं यह अर्थ नही लूं कि आप साम्प्रदायिकता की समस्या और पितृसत्ता जैसे पाखंड की चीजों को एक साथ जोड़ कर देखने के हिमायती हैं?

शायद इसका आपस में इस तरह का गहरा कोई संबंध नहीं है। उस कहानी में एक पुरुष प्रधान समाज है। पुरुष प्रधान समाज का जो पूरा आतंक है– वर्चस्व है।

एक और कहानी है 'शीशों का मसीहा कोई नहीं' उसमें एक खास किस्म की संस्मरणात्मता और स्थानीयता है वह कहानी कैसे लिखी गई।

मेरे होम टाउन फतेहपुर में छोटा मोटा दंगा हुआ था। वहां बाल काटने वाले की एक दुकान थी। दुकान के मालिक को लोग मामू–मामू कहते थे। मैं वहां दंगे के बाद गया तो दुकान बंद थी। मैंने पूछा बंद क्यों है तो बताया गया कि दंगे के दौरान मामू की दुकान को दंगाइयों ने तोड़–फोड़ दिया था। मामू के पास ज्यादा कुछ था भी नहीं था लेकिन एक पुराना शीशा था जिसे मामू ने बड़े चाव से दुकान में लगा रखा था। वह शीशा भी तोड़ दिया गया था। वह दुकान बहुत दिनों से बंद है। वो एक बिन्दु था उस कहानी के शीर्षक का।

ऐसी एक कहानी है 'मुश्किल काम' उसमें व्यंग्य बड़ा भीतरी चोट करने वाला है। एकदम बारीक। वो कहानी कैसे लिखी गई? बल्कि मुझे यह पूछना चाहिए कि ऐसा दुर्लभ अनुभव, ऐसा बारीक अनुभव कहां से अर्जित कर पाये?

अलीगढ़ में शराब का ठेका था। इधर शहर था और उधर विश्वविद्यालय बीच में

रेलवे की लाईन एक पुल था जिसे कठपुला कहते थे। यह लकड़ी का पुल था, जो अब लकड़ी का नहीं रहा। कठपुले के इधर आ जाओ तो शहर के अंदर आ जाते थे। आमतौर पर शराब की दुकानें, शराब के ठेके वो सब कठपुले के उधर शहर में थे। शहर में मेरा आना-जाना काफी रहता था। वहां से अख़बार निकलता था 'दैनिक प्रकाश', उसके संपादक थे लट्ठ जी। उनका उपनाम था लट्ठ। उनके सहयोगी संपादक थे उनका नाम था तमंचा। तमंचा और लट्ठ जी बैठ कर अपने अखबार का संपादन करते थे। एक गली में उनका ऑफिस था और गली के ऑफिस में फोन था और फोन पर समाचार आते थे। स्थानीय कस्बों से फोन पर समाचार आते थे। अब उस जमाने में टेलिफोन की लाइनें ऐसी होती थीं कि चिल्लाना पड़ता था। बात समझ में नहीं आती थी। अक्सर हत्यारे और हत्या होने वालों के नाम से बदल जाते थे। तो उस इलाके के जो शराबखाने थे उसमें हम लोग अक्सर जाया करते थे और देखते थे कि तनाव के दिनों में भी यहां हिन्दू और मुस्लिम शराबी बड़े भाईचारे से पीते हैं। दालान में एक तरफ हिन्दू और दूसरी तरफ मुसलमान पीने वाले बैठा करते थे। जोश में आकर वे एक-दूसरे की खातिर करते थे और कभी वाक् युद्ध भी चालू हो जाता था। बहुत सी कहानियां इस तरह जन्म लेती हैं कि आप समझ नहीं पाते कि वो आप तक कैसे पहुंची। जैसे 'शाह आलम की कैम्प की रूहें' कहानी है। दिल्ली में एक संस्था जो बच्चों के लिए काम करती हैं। अहमदाबाद के दंगों के बाद यह संस्था दंगों से प्रभावित कुछ बच्चों को लेकर दिल्ली आयी थी और अपनी आपबीती बता रहे थे। बच्चों की मातृ भाषा गुजराती थी और वे ठीक से हिन्दी नहीं बोल पा रहे थे। लगता था उन्हें हिन्दी में कुछ लिख कर दिया गया है जिसे बोलने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन इन बच्चों के शब्द और उनके आंखों तथा चेहरे के भाव में साम्य नहीं था। इस घटना से प्रभावित होकर मैंने 'शाह आलम की कैम्प की रूहें' कहानी लिखी थी।

एक कहानी है 'तेरह सौ साल का बीबी केमिल' उसमें दर्शाया गया है कि धर्म की आड़ में कैसे लोग भ्रष्ट आचरण करते हैं। उसमें एक डॉक्टर अतिया अजीज हैं जो हस्तक्षेप करती हैं। उसको हम कथायुक्ति के रूप में ही देखते हैं। कहानी बनाने के लिए आपने ट्रिक किया है, लेकिन सवाल यह है कि इस तरह से लोगों के मामलो में बीच में पड़कर बोलना अब बीती बात हो गई है। अब कोई किसी के बीच नहीं बोलता है। ऐसा क्यों हो गया या कैसे होता चला गया।

अब तक मुस्लिम समाज में ऐसे गिनती के लोग होते थे जो अपनी आजाद या निजी राय खुल कर देते थे। अलीगढ़ में प्रो. इरफान हबीब मंच से खड़े होकर यह कहते थे कि मैं सीपीआईएम का मेम्बर हूं और इस बात पर मुझे गर्व है। आप लोग इसे चाहे जैसे समझे या फिर फर्ज कीजिए कहते थे कि 'मैं ईश्वर को नहीं मानता हूं'। आजकल जावेद अख्तर मंच से कहते हैं कि मैं ईश्वर को नही मानता हूं। इस देश में रहते हुए इतनी आजादी है

कि मैं अपने विचार खुल कर कह सकता हूं। पाकिस्तान में होता तो शायद नहीं कह सकता था। हमारे समाजों में ऐसे तबके थे जो खुलकर अपनी बात कहते थे। वे तबके कैसे दबते चले गये यह सोचने की बात है। शायद इसीलिये दबते चले गये क्यों कि वोटों की राजनीति उनका महत्व नहीं था। दूसरी तरफ वोटों की राजनीति में कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं की बहुत बड़ी भूमिका थी क्योंकि वे वोट दिला सकते थे। आज हमारे लोकतंत्र में स्थिति यह है कि प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति तक सभी धर्मों के धर्मांध नेताओं के आगे-पीछे घूमते हैं। उदाहरण के लिए प्रधानमंत्री अपनी इफ्तार पार्टी में शाही इमाम को आमंत्रित करते हैं। लेकिन इफ्तार पार्टी में उदार मुसलमानों की ज्यादा पूछ नहीं होती। अब सवाल ये है कि हम ऐसा लोकतंत्र चला रहे हैं जिसमें महत्व केवल वोट का है और सत्ता में बने रहने का है। लोकतंत्र में उन सिद्धांतों का कोई महत्व नहीं बचा जिनके आधार पर लोकतंत्र की बुनियादें खड़ी हैं। कभी उर्दू के कवि और प्रसिद्ध न्यायविद पंडित आनंद नारायण मुल्ला जो इलाहाबाद हाईकोर्ट में चीफ जस्टिस थे, उनका एक शेर है-

इस अवामी दौर में मुल्ला वही दाना है आज
जिसके हक़ में कुछ सिवा अंधों की रायें हो गयीं।

मतलब यह है कि वही बहुत बड़ा बुद्धिमान है जिसे बहुमत और वह भी बेपढ़ा-लिखा बहुमत विद्वान मानें। हमने अपने लोकतंत्र को इतना बिगाड़ दिया है कि लोकतंत्र को प्रतिगामी शक्तियां चला रही हैं। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र कितना बचेगा यह कहना मुश्किल है। लखनऊ में एक राजा कोटवारा हुआ करते थे। वे लंदन में पंडित नेहरू के सहपाठी थे। आजादी के बाद पंडित जी ने उन्हें बुलाकर किसी देश का राजदूत बना दिये जाने का आफर दिया था। राजा साहब ने मुझे बताया था कि उन्होंने पंडित नेहरू को जवाब दिया था कि पंडित जी मैंने बहुत कोशिश करने के बाद हाथ से खाना खाना सीखा है। आप क्या चाहते हैं मैं दोबारा छूरी कांटे से खाना खाने लगूं। इस बात पर पंडित जी हंसे थे और उन्होंने कहा था कि ठीक है तुम्हें कोई दूसरा काम सौंपा जायेगा। राजा साहब ने चलने से पहले पंडित जी से कहा था ये जो विदेशी डेमोक्रेसी का पौधा आपने लगाया है इस पर हम सब को पूरे मुल्क को पछताना पड़ेगा, आंसू बहाने पड़ेंगे अगर पच्चीस साल के अंदर-अंदर पूरा देश शिक्षित न हो गया तो। आज डेमोक्रेसी के पौधे पर हम सब रो रहे हैं। इसलिए मेरे नये संग्रह का नाम 'डेमोक्रेसिया' है।

'मैं हिन्दू हूं' कहानी संग्रह में कोई प्रगतिशील पात्र नजर नहीं आता है। प्रगतिशील पात्रों का धीरे-धीरे गायब होते जाना प्रगतिशीलता की विफलता ही कहा जाएगा।

हां। प्रगतिशीलता की विफलता ही कहा जायेगा। एक अर्थ समय आज़ादी के बाद प्रगतिशीलता सिमटती चली गयी है। देखिए बड़ी ताकत से आपको ताकत मिलती है।

नेहरू के युग तक पढ़े लिखे लोगों का, रचनाकारों का सम्मान होता था। राजनीति के कुछ आदर्श थे। नेहरू युग का भारत बहुत अलग था। एक रोचक प्रसंग है। आज़ादी के बाद हिन्दुस्तानी थियेटर ग्रुप शंकुतला नाटक का मंचन कर रहा था। इस मंचन में प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू भी आमंत्रित थे। जिस दिन नाटक का मंचन होना था उस दिन नाटक करने वालों के पास प्रधानमंत्री सचिवालय से फोन आया कि पंडित जी यह पूछ रहे हैं कि क्या वे अपने साथ अपने किसी अतिथि को भी नाटक में ला सकते हैं? निश्चित रूप से आयोजकों ने यह स्वीकार कर लिया। यह घटना नेहरू युग के कई पक्षों पर प्रकाश डालती है। नेहरू और इंदिरा गांधी के बाद प्रधानमंत्रियों ने नाटक किया किसी सांस्कृतिक आयोजन में सक्रियता नहीं दिखायी। आपने यह कहीं नहीं पढ़ा होगा कि आजकल के प्रधानमंत्री नाटक देखने जाते हैं। वे उद्घाटन करने जाते हैं। लेकिल उनके उद्घाटन पंडित नेहरू के समय जैसे उद्घाटन नहीं होते। कभी आप रफी मार्ग पर स्थिति आ.सी.एस.आर. की इमारत देखने जाइये। वहां उद्घाटन संबंधी एक पत्थर लगा है जिस पर लिखा है– 'दिस विल्डिग वाज इनाग्रेटेड बाई मौलान अबुल कलाम आजाद, यूनियन ऐजुकेशन मिनिस्टर ऑफ इडिया, इन दी प्रजेन्स ऑफ पंडित जवाहर लाल नेहरू, प्राइम मिनिस्टर ऑफ इंडिया।' यानी प्रधानमंत्री वहां पर मौजूद था और उसकी उपस्थिति में शिक्षा मंत्री ने इस इमारत का उद्घाटन किया। आज यह संभव नहीं है। यह डेमोक्रेसी का पतन ही कहा जायेगा कि आज सामंती ढंग से डेमोक्रेसी चलती है। प्रगतिशीलता के पतन का एक प्रमुख कारण देश की राजनीति से वामपंथियों का सफाया भी है। आज न तो वामपंथी दलों का न कोई प्रभाव है और न उनके सक्रिय संगठन है।

साम्प्रदायिकता की चर्चा में हम को आपातकाल की बात याद करनी चाहिए कि आपातकाल का समर्थन किया था प्रगतिशील ताकतों ने।

सिर्फ सीपीआई ने किया था। सीपीएम ने नहीं किया था।

इसको अब अनुचित ही माना जाना चाहिए।

देखिए हर रूप में माना जाना चाहिए क्योंकि समाजों की प्रगति का आप एक नक्शा बनाते हैं और उसके हिसाब से चलते हैं। कभी आप इसमें 'जम्प' नहीं ले सकते हैं। यदि आप ये कहें की ट्रेनें समय पर चलती थी, भ्रष्टाचार नहीं होता था, लोग कानून का पालन करते थे। यह सब एक 'जम्प' द्वारा, एक अध्यादेश द्वारा प्राप्त किया था। यह विकास की सामान्य प्रक्रिया और गति के कारण नहीं हुआ था बल्कि ओवर नाइट हुआ था। लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन कर लिया गया था। वो खत्म हो गये थे।

लोकतंत्र भी हमारा कैसा है? हमारे यहां लोकतंत्र के बारे में कोई लम्बी बहस नहीं हुई। आजादी से पहले तो छोटी–मोटी बहसें होती थी, कुछ सम्पादकीय लिखे गये थे, लेकिन व्यापक बहस नहीं हुई थी। हम पश्चिम के लोकतंत्र ला रहे थे। पश्चिम ने तो ये दो सौ

साल से अनुभव के बाद यह अर्जित किया था। हमें तो दो सौ साल का अनुभव नहीं हुआ था। हमने लोकतंत्र के पश्चिमी माडल को तैसा-का-तैसा क्यों स्वीकार कर लिया। इसका कोई उत्तर हमारे पास नहीं है।

बहरहाल, आपातकाल। इमरजेन्सी का दौर एक मायने में रचना करने के लिए अच्छा था। इमरजेन्सी से पहले लोग बहुत ही 'स्लोगन टाइप राइटिंग' करते थे। इमरजेन्सी लगने के बाद उन लेखकों को अपने आपको डिसीप्लीन करना पड़ा और वह डिसीप्लीन करना अच्छा ही हुआ। मैं एक दिलचस्प किस्सा बताऊं आपको। एक दोस्त सीपीआई के थे । मैं जब ओखला में रहता था। वे सुबह-सुबह आ कर बैठ जाते थे। जब मैं अकेला था शादी नहीं हुई थी। वह मुझे पूछते थे कि इमरजेन्सी के बारे में आप क्या सोचते हैं? मुझे ये मालूम था कि मैंने अगर इमरजेन्सी का विरोध किया तो यह आदमी मेरी रिपोर्ट कर देगा। मैं पकड़ लिया जाऊंगा बल्कि जेल भी हो जाएगी। दूसरी ओर मैं इमरजेन्सी की प्रशंसा भी नहीं कर सकता था इसलिए मैं उसे गोल-गोल जवाब देता था। वह रोज आकर मुझसे राजनीतिक सवाल पूछकर परेशान किया करता था। एक दिन सुबह वह आया और उसने उसी तरह के सवाल किये। मैंने कहा- मैंने कुछ कहानियां लिखी हैं आपको सुनाता हूं। मैंने कहानियां सुनायी। वह उठकर चला गया और दुबारा नहीं आया। तो कम से कम ये फायदा हुआ कि उससे जान बची। इमरजेन्सी के दौरान मैंने पंचतंत्र शैली में प्रतीकात्मक ढंग से जो कहानियां लिखी थीं वे एक प्रकार से सीधी मार करने वाली कहानियां थी लेकिन प्रतीकों और विम्बों के माध्यम से पूरी बात कही गयी थी। कहानी में कविता के उपादानों का प्रयोग किया गया था।

अब मैं आपसे उर्दू और हिन्दी के संबंधों पर प्रश्न करना चाहता हूं। यह बहुत संवेदनशील और महत्वपूर्ण विषय है जिस पर प्रायः खुलकर बातचीत नहीं की जाती।

देखिए हिन्दी ने अपना इतना बड़ा नुकसान किया जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। नुकसान यह किया कि उर्दू को अस्वीकार कर दिया। उर्दू से अपना कोई रिश्ता रखा नहीं। हिन्दी की जो एक बहुत बड़ी शक्ति थी उसे हिन्दी ने खो दिया। अपनी ताकत को खो दिया। अगर आप उस ताकत का इस्तेमाल करते तो आज हिन्दी बहुत अधिक संपन्न भाषा होती। दोनों खड़ी बोली से ही विकसित हैं। उर्दू को भाषा के रूप में और काव्य भाषा के रूप में विकसित करने की कोशिश चार सौ साल हुई। चार सौ साल की जो अर्जित संपदा थी उसे हिन्दी ने अस्वीकार कर दिया। उर्दू अर्थात् खड़ी बोली की चार सौ साल की उन उपलब्धियों का हिन्दी लेखकों को पता नही है।

उन्नीसवीं शताब्दी में एक अलगावाद शुरू हुआ था जिसने हिन्दी और उर्दू के बीच में या हिन्दू और मुसलमानों गंगा-जमुनी परंपरा को 'निगेट' कर दिया था ।

दरअसल मसला ये था कि 1857 के बाद ब्रिटिश शासन यहां पर स्थापित हुआ।

यह भारतीय इतिहास में एक बहुत महत्वपूर्ण घटना थी। एक ऐसी शक्ति देश में शासन कर रही है जिसकी जड़ें इस देश में नही थीं। वे सात समंदर पार से आये थे। उनकी एक अलग संस्कृति थी, अलग भाषा थी, अलग विचार थे । वे विकास के अलग चरण में थे। मतलब उस समय योरोप सामंतवाद से निकल कर उपनिवेशवाद में प्रवेश कर चुका था। जबकि भारत सामंतवाद की स्थिति में था। भारत पर शासन करने वाले अंग्रेज अन्य सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों के अतिरिक्त लोकतंत्र अर्थात् बहुमत को महत्व देते थे। भारत में स्थिति यह थी कि कम संख्या में होने के बावजूद सामंती मुस्लिम वर्ग का वर्चस्व था। उन्हें डेमोक्रेसी या लोकतंत्र का विचार अपने विरोध में आया विचार लगता था। भारत में अंग्रेजी नीतियों के साथ बनायी गयी व्यवस्था ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी जहां हिन्दुओं और मुसलमानों को अपने हित टकराते हुए दिखाई पड़ने लगे थे। हिन्दी–उर्दू का विवाद भी इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। अपनी अलग पहचान बनाकर अपनी संख्या के आधार पर सुविधायें प्राप्त करने की प्रक्रिया में जो स्थिति पैदा कर दी थी उसने हिन्दी और उर्दू के बीच में न केवल अंतर उत्पन्न किया था बल्कि एक प्रकार की प्रतिद्वंता भी हो गयी थी। आज इस पूरी समस्या पर फिर से सोचने की आवश्यकता है।

'लोकायत' में एक बार आपका एक छोटा सा इन्टरव्यू छपा था उसमें आपने कहा था कि अध्यापन का पेशा लेखक के लिए बहुत अच्छा नहीं है। मैं ये सवाल कर रहा हूं कि अध्यापन ही वह पेशा ही आपको वह अवसर देता है जो आपको नौजवानों की पीढ़ी को प्रगतिशील– सांस्कृतिक बोध आप दे सकें, कल्चर के फ्रंट पर आप यह बोध उसके अन्दर भर सकें जो जरूरी है। वहां वह असफल कैसे होता है?

देखिए मैं आपको एक रोचक प्रसंग बताता हूं। डॉ. जाकिर हुसैन ने किसी इमारत का उद्घाटन करते हुए कहा था कि मैं इमारतों का उद्घाटन करने से बहुत डरता हूं, घबराता हूं, नहीं करता क्योंकि इमारतें आमतौर पर विचारों का मकबरा बन जाती हैं, विचार उसके नीचे दब जाते हैं। हमारा जो शिक्षा जगत है वह पूरा उसी तरह की इमारत है जहां विचार दबे पड़े हैं। इमारत बहुत ऊंची हो गई। जहां तक पेशे का सवाल है लेखक के लिए सबसे ज्यादा जरूरी चीज होती है कि वह कैसे सोसायटी के साथ इन्टररेक्ट कर रहा है। विश्वविद्यालय सोसायटी के 'आइलैण्ड' हैं अर्थात् द्वीप हैं जो आपको बाहर की दुनिया में जाने से रोकते हैं, कहीं जाने में बाधा बनते हैं। विश्वविद्यालय उस ताक़त को, जो यदि समाज में होती तो बहुत गतिशील होती, सीमित कर देते हैं। मैं यह कहना यह चाहता हूं कि हमारे विश्वविद्यालय प्रायः यथा स्थिति को बनाये रखने और बुद्धिजीवियों को संतुष्ट रखने का माध्यम बन गये हैं। आप कल्पना करें कि यदि लाखों की संख्या में पढ़े–लिखे बुद्धिजीवी यदि विश्वविद्यालय के चार दीवारी के अंदर बंद न होते और समाज के साथ उनका जीवंत संबंध बना होता तो क्या होता।

आपने लघु कथा प्रश्नोतरी में लोककथा जैसी शैली चुनी है कहानियों के लिए। खासतौर पर साम्प्रदायिकता विरोध के लिए। क्या केवल इसीलिए कि इससे सीधा असर हो और बात बने?

देखिए ऐसा है कि अपने आपको तोड़ने में रचनाकार को मजा आता है। कोई भी रचनाकार इस बात पर गर्व कर सकता है कि उसने अपनी शैली और भाषा को तोड़ा है, बदला है, नया रूप दिया है और अपनी बात को नये प्रकार से कहने के रास्ते खोजे हैं। यदि किसी लेखक की एक कहानी बहुत सफल और चर्चित हो गयी तो क्या वह जीवन भर उसी तरह की कहानियां लिखता रहेगा? यदि हां तो मैं उसे लेखक की कमजोरी मानूंगा। मैंने शुरू से ही यह सफल और असफल कोशिश की है कि अपने आपको बदलता रहूं। सबसे बड़ा काम यह कि रचनाकार अपनी रचना से आतंककित न हो। मैंने कभी यह कोशिश नही की कि किसी एक शैली, कोई एक स्टाइल, भाषा का एक नमूना, कोई एक ढंग ऐसा हो जो मुझे पकड़ ले और यह कहे कि बस तुम्हें अब ऐसे ही करना है। इब्ने इंशा का शेर है–

क्यों लकीर के फकीर बने रहिए क्यों न रंग बदल के ग़ज़ल कहिए
ये जो उर्दू जबान है हमारी है सौ रंग है इसके दामन में।

किसी भी कलाकार को रंगों की तलाश करते रहना चाहिए। विभिन्न रंग। यदि रचनाकार अपने आपको तोड़ नहीं रहा है तो रचना रचनाकार को तोड़ देती है। वह अपनी उपलब्धि का दास बन जाता है और अपनी क्षमता को कमजोर कर देता है।

कहानी आलोचना आप भी पढते होंगे, पत्रिकाओं में लेख छपते हैं तो वहां पर एक खास तरह के खांचे बनते हैं हिन्दी कहानी में दलित कहानी, स्त्रियों के द्वारा लिखी कहानी,ऐसे ही वह मुस्लिम हिन्दी कथाकारों का एक खांचा बनता है उसमें वो असग़र वजाहत, हबीब कैफ़ी, अब्दुल बिस्मिलाह, आलमशाह खान चार छह दस नाम लिखता है। जब ऐसे खांचे में आप अपना नाम देखते हैं तब आपको कैसा लगता है?

देखिए, जो कुछ नहीं कर सकता वह खांचे बनाता है। मैं यह मानता हूं कि इन खांचों ने और विमर्शो ने हिन्दी साहित्य को बहुत नुकसान पहुंचाया है। इसका आकलन अभी तो शायद नही हो रहा है लेकिन पच्चीस पचास सालों बाद होगा कि आपने रचना के महत्व को कम कर दिया है और आपने विषय के महत्व को बढ़ा दिया है। जबकि रचना में विषय का बहुत महत्व नहीं होता है। कहानी केवल विषय से तो श्रेष्ठ नहीं हो सकती। हो सकता है दलित जीवन के विषय पर कोई श्रेष्ठ रचना भी हो। लेकिन यह जरूरी नहीं है। रचना को आप किस तरह से प्रजेन्ट कर रहे हैं यही बहुत महत्वपूर्ण होता है । मुझे अगर कोई मुस्लिम कहानीकार वगैरह मानता है तो यह उसकी गलती है। विषय के आधार पर इस तरह के वर्गीकरण उचित नहीं हैं। सवाल यह है कि आप मुस्लिम कहानीकार या रचनाकार किसे कहेंगे? जो मुसलमान होगा वही मुस्लिम रचनाकार हो सकता है। अब सवाल यह है कि

कोई मुसलमान है या नहीं है। इसका पता क्या केवल नाम से चल जायेगा? या लेखक से पूछा जायेगा? या कोई मुल्ला मौलवी बतायेगा? क्या मौलवी से सार्टिफेकेट लेना जरूरी होगा? मुस्लिम होने के लिए तो धार्मिक निष्ठा और निर्धारित आचार-व्यवहार की भी आवश्यकता पडे़गी? क्या मुस्लिम लेखक के लिए दाढ़ी रखना आवश्यक होगा? आदि-आदि। और यदि लेखक मुस्लिम होने के बावजूद व्यवहार में धार्मिक नहीं है तो क्या उसे मुस्लिम नहीं माना जायेगा? यदि यह कहा जाए कि मुस्लिम जीवन पर कहानियां लिखने वाला मुस्लिम कहानीकार माना जायेगा तब स्थिति और गंभीर हो जायेगी। क्योंकि तब हमारे बहुत से हिन्दू मित्र अपने आप मुसलमान बन जायेंगे।

साम्प्रदायिकता खत्म करने के लिए क्या ठोस काम हम संस्कृतिकर्मियों की तरफ से किए जाने चाहिए।

साम्प्रदायिकता को खत्म करने के लिए समाज का चहुंमुखी विकास सबसे जरूरी है। शिक्षा और जागरूकता के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना का होना भी आवश्यक है। साहित्य और कला का प्रभाव मनुष्य को संकीर्णता और जड़ता से ऊपर उठाता है। दुर्भाग्य से हमारे देश में न तो शिक्षा और जागरूकता पर बल दिया जाता है और न सांस्कृतिक विकास की बात की जाती है। दरअसल आज हमारी समाज व्यवस्था अपने हित में साम्प्रदायिकता का पोषण कर रही है।

(बातचीत मे भंवरलाल मीणा भी शामिल थे। सवाल सारे पल्लव के थे।
लिप्यन्तरण – भंवरलाल मीणा)

❑❑❑

भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच का रिश्ता किसी भी समाज को समझने की एक महत्वपूर्ण कुंजी है लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में यह स्वस्थ और बराबरी का होता है। एकाधिकारी और फ़ासीवादी समाजों में यक रिश्ता घृणा तथा हिंसा से भरा होता है। आज से पच्चीस–तीस साल पहले यह कहा जाता था कि भारत में मुसलमानों का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि देश में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कितनी सुदृढ़ होती हैं। दुर्भाग्य से पिछले पच्चीस–तीस सालों में लोकतांत्रिक शक्तियाँ कमज़ोर हुई है, जिसके कारण आज बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच अविश्वास और हिंसा का रिश्ता बन गया है। निश्चित रूप से यह रिश्ता उस समय तक मित्रता, बराबरी और सहयोग का रिश्ता नहीं बनेगा, जब तक देश में लोकतंत्र स्थापित नहीं होगा और धर्म जाति की राजनीति का बोलबाला रहेगा।

इस तथ्यों को स्वीकार करने के बाद भी कि आज हमारे समाज में आबादी का बड़ा हिस्सा सांप्रदायिक नहीं है और कई स्तरों पर कई तरह से हिंदू–मुसलमानों के बीच अच्छे संबंध है, हमारे देश की मूल आत्मा सांप्रदायिक नहीं है, फिर भी इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच के रिश्ते कटु है माहौल अवश्विास, घृणा, द्वेष और हिंसा का बना दिया गया है। इससे पहले इसी तरह का वातावरण विभाजन से पूर्व बनाया गया था और परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ, हज़ारों लोग मारे गए और लाखों लोग बेघर हुए यह तो खुली हुई सच्चाई है कि जब–जब सांप्रदायिक घृणा और हिंसा फैलती है, तब–तब देश और देशवासियों को हर तरह का नुकसान होता है। इसलिए सांप्रदायिकता को समाप्त करना केवल किसी संप्रदाय विशेष के लिए ही नहीं है, बल्कि देश की एकता, अखंडता, समृद्धि के लिए भी अत्यंत ज़रूरी है।

मुसलमानों की स्थिति और उनकी समस्याओं को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि पिछले पचास सालों में सांप्रदायिकता के निर्बाध रूप से बढ़ने के कारण क्या रहे और उसे क्यों रोका नहीं जा सका? राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ब्रिटिश उपनिवेश से मुक्त होने की लड़ाई में हिंदू और मुसलमान उपवादों को छोड़कर कांग्रेस के झंडे तले जमा हो गए थे। आज़ादी के बाद कोई ऐसा बड़ा राष्ट्रीय एजेंडा नहीं बन सका, जो दोनों को साथ आने की प्रेरणा दे पाता। दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान छिपी हुई हिंदू राष्ट्रवादी

ताकतों को मौका मिल गया कि वे राष्ट्रीय एजेंडों के न होने के कारण जो स्थान रिक्त हो गया था, उसे भर दें। लोकतंत्र की प्रक्रिया में जाति और धर्म के समीकरण समाहित होते चले गए, जिससे सांप्रदायिक सोच को आधार मिला। पाकिस्तान के साथ बढ़ती शत्रुता और युद्धों ने सांप्रदायिकता को बढ़ाया। कांग्रेस पार्टी के पास मुद्दों का अभाव हो गया और उसने धर्म के आधार पर वोट लेने की राजनीति को स्वीकार किया। वामपंथी आंदोलन तथा किसान–मज़दूर संगठनों का हिंदी भाषा क्षेत्र में विंघटन हुआ और उसका स्थान सांप्रदायिक शक्तियों ने ले लिया मुसलमानों में पर्याप्त सामाजिक, सांस्कृतिक विकास नहीं हो पाया जिसके परिणाम स्वरूप धर्मान्ध मुस्लिम नेताओं का उदय हुआ, जिन्होंने हिंदू सांप्रदायिकता को बढ़ने का आधार प्रदान किया। हिंदूवादी शक्तियों ने अपने को संगठित किया, सामाजिक संस्थाएं बनाई, व्यापार मंडल बनाए, विदेशों में धर्म के नाम पर अपना आधार मज़बूत किया। संसाधन जुटाएं और जनसंचार के माध्यमों (विशेषकर हिंदी माध्यमों) पर अपना एकाधिकार स्थापित करके घृणा, द्वेष, हिंसा का व्यापक प्रचार शुरू किया गया। जो बिना किसी चुनौती के निर्बाध रूप से आगे बढ़ता रहा और अततः जन–मानस को बड़ी हद तक सांप्रदायिक बनाने में सफल हुआ। भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल आदि ने अपार संसाधनों के साथ हिंदुत्व के एजेंडे को ही लागू किया है। यही उनका अकेला शस्त्र है। हिंदुत्व तथा सांप्रदायिक घृणा और हिंसा के कारण ही आज वे सत्ता में बैठे है। सत्ता प्राप्त करने का इससे सरल नुस्खा क्या हो सकता है? यही तो मुस्लिम लीग और मोहम्मद अली जिन्ना ने किया था।

हिंदू सांप्रदायिक शक्तियों ने मुसलमानों के प्रति घृणा और हिंसा फैलाने को एक उद्योग में बदल दिया हे जीवन के सभी क्षेत्रों में परोक्ष या प्रत्यक्ष तरीके से यह ज़हर समाज की शिराओं में लगातार भरा जा रहा है। परिणाम स्वरूप गुजरात जैसी घटनाएं घटती हैं। प्राप्त आंकड़े और अध्ययन बताते हैं कि सांप्रदायिक दंगों में जान–माल का सबसे अधिक नुकसान मुसलमानों को होता है। इसके साथ–साथ कानून और व्यवस्था बनाए रखने पर जो करोड़ों रूपया खर्च होता है। वह करदाताओं का पैसा है, इस तरह प्रत्येक दंगा न केवल मुसलमानों को बर्बाद करता है, बल्कि देश को जर्जर अर्थवयवस्था को और अधिक जर्जर बना देता है। दंगों का लाभ निश्चय ही सांप्रदायिक दलों की होता है। धर्म के आधार पर भावनाओं को भड़काकर सांप्रदायिक दल चुनाव जीतते हैं और अपना शासन स्थापित करते हैं। रोचक यह है कि सांप्रदायिक उन्माद फैलाकर दंगा कराने और देश पर करोड़ों रुपए का बोझ डालने वाले, देशवासियों में फूट और घृणा का ज़हर फैलाने वालों ने देशभक्त होने का चोला पहन रखा है।

मुस्लिम विरोध या मुसलमानों के प्रति घृणा का एक कारण हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संवादहीनता या एक–दूसरे को न समझना भी है। कई शताब्दियों से

मुसलमान इस देश में रह रहे हैं। फिर भी उनके और हिंदुओं के बीच अविश्वास तथा एक-दूसरे पर शक करने या एक-दूसरे के बारे में फैलाए गए भ्रम और आरोपों ने हमारी सोच को बड़ी हद तक जड़ बना दिया है। अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे लोगों में ही नहीं बल्कि पढ़े-लिखे और यहाँ तक कि वामपंथी सोच के कुछ बुद्धिजीवियों तक में भारतीय मुसलमानों के बार में दिलचस्प भ्रांतियां हैं। पहली भ्रांति तो यही है कि भारतीय मुसलमानों को विश्व मुस्लिम बिरादरी का अभिनन अंग मान लिया जाता है और पूरे संसार में मुसलमान जो कुछ कर रहे हैं, उसे भारतीय मुसलमानों का स्वभाव या जातिगत विशेषता बनाया जाता है। उदाहरण के लिए यह कहा जाता है कि मुसलमान जहाँ 'बहुमत' में है, वहाँ तानाशाह हैं और जहाँ 'अल्पसंख्यक' है, वहाँ वे बहुमत के लिए सिरदर्द बने हुए हैं। सिद्ध किया जाता है कि सऊदी अरब कितना धार्मिक और असहिष्णु देश है। सारे अरब देश धर्मान्धता का शिकार हैं। इसलिए भारतीय मुसलमान भी धर्मान्धता का प्रतीक है और उनके साथ वही व्यवहार करना चाहिए, जो मुस्लिम देशों में गैर-मुसलमानों के साथ होता है। इस तर्कों का सीधा मतलब यह है कि भारतीय मुलसमान अरब, इराक, ईरान के मुसलमानों जैसे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि भारतीय मुसलमान विशुद्ध रूप से भारतीय हैं और वे भावुकतावश चाहे अरब या ईरान से लगाव रखते हों, पर यथार्थ यह है कि वे भारत के अलावा न कहीं जा सकते हैं और रह सकते हैं और न कही रहना उनको पसंद आ सकता है। मैं अक्सर ईश्वर, अल्लाह, प्रभु, ईशु को धन्यवाद देता हूँ कि मैं भारतीय मुसलमान हूँ। जब कल्पना कीजिए कि यदि मैं अरबी, इराकी, ईरानी मुसलमान होता, तो क्या होता? क्या आदमी की सबसे बड़ी आवश्यकता आज़ादी वहां इतनी होती?

यह भी दिलचस्प बात है कि भारतीय मुसलमान मक्का-मदीना को अपनी श्रद्धा का केंद्र समझता, मानता है, तो हमें अच्छा नहीं लगता लेकिन अमेरिका में रहने वाले हिंदू अगर अस्थि विसर्जन के लिए काशी आते हैं, तो हमें प्रसन्नता होती है। हमारे परिवार के लोग अमेरिका, यूरोप में बस गए है, उनसे हम लगातार संपर्क बनाए रखना चाहते हैं, वहां जाते भी है, वे यहाँ आते भी है, लेकिन मुसलमान अपने रिश्तेदारों के लि पाकिस्तान जाना चाहते हैं या वहाँ से लोग यहाँ आना चाहते हैं, तो हमें बुरा लगता है, क्यों?

अक्सर पूछा जाता है, मुस्लिम देशों में गैर-मुस्लिमों को क्या सुविधाएं हैं? उदाहरण के लिए आप सऊदी अरब में मंदिर नहीं बना सकते। सवाल पूछे जाने के पीछे अभिप्राय यही होता है कि यदि आप सऊदी अरब में मंदिर नहीं बना सकते, तो यहाँ, यानी भारत में एक बाबरी मस्जिद को तोड़े जाने के लिए इतना शोर, हंगामा, हिंसा क्यों कर रहे हैं? मुस्लिम देशों की कट्टरता का हवाला देते हुए भारत में हिंदू कट्‌टरता की पक्षधरता करने वाले शायद यह नहीं मानते कि भारतीय समाज किसी भी मुस्लिम देश के समाज से अधिक उन्नत समाज है। इसलिए आज एक पिछड़े समाज की तुलना किसी उन्नत समाज है।

इसलिए आप एक पिछड़े समाज की तुलना किसी उन्नत समाज से नहीं कर सकते और वह नहीं कह सकते कि पिछड़े समाज के मूल्य उन्नत समाज पर थोप दिया जाए। मतलब भारत को सऊदी अरब नहीं बनाना चाहिए। कोई भी यह नहीं चाहता कि जिस तरह वैचारिक स्वतंत्रता सऊदी अरब में नहीं है, उसी तरह भारत में भी ख़त्म कर दी जाए।

मुसलमान पूरी दुनिया को मुस्लिम बनाना चाहते हैं? जब मुसलमान विश्व शक्ति थे भारत में 'उनका' राज्य था, उस समय उन्होंने धर्म परिवर्तन में कितनी रूचि ली, जो आज वे पूरी दुनिया को मुसलमान बना सकते हैं? धर्म जब राज्यसत्ता में बदल जाता है, तो उसके उद्देश्य एकदम स्पष्ट हो जाते हैं उसके और किसी दूसरे राज्य के उद्देश्य एक हो जाते हैं। हिंदुओं को मुसलमान न बनाने के पीछे जो तर्क मध्यकाल में एक मुगल सम्राट जहाँगीर ने दिए थे, वहीं आज भी मान्य है, जहांगीर ने लिखा है कि मुझसे कहा जाता है, मैं जिस देश का सम्राट हूँ, वहाँ बाहुल्य गैर-मुसलमानों का है और मैं उन्हें मुसलमान क्यों नहीं बनाता? मेरे लिए यह बहुत कठिन काम नहीं है सेना को इस काम में लगाया जा सकता है? लेकिन निश्चित रूप से धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया में हिंसा होगी, कृषि, व्यापार की क्षति होगी, राजस्व घट जाएगा, साम्राज्य कमज़ोर पड़ जाएगा। इसलिए यह मैं ईश्वर पर छोड़ता हूँ कि जो लोग सही रास्ते पर नहीं हैं, उन्हें सही मार्ग पर लाए।

मुग़ल सम्राट ने साफ़ कह दिया कि मेरा काम राज्य करना है। धर्म-परिवर्तन नहीं सत्ताएं सत्ता में रहना चाहती है। धर्म यदि उनके लिए सत्ता में बने रहने का माध्यम बन सकता है, तो ठीक है, अन्यथा धर्म-परिवर्तन उनके 'एजेंडे' नहीं हो सकता।

'मुस्लिम तालिबान ने अफगानिस्तान में बौद्ध प्रतिमाएं तोड़ी थीं। हमने तो सिर्फ़ बाबरी मस्जिद तोड़ी है। मुसलमान इतना परेशान क्यों हैं? यदि वे दूसरे धर्मों के विश्वासों के साथ तोड़-फोड़ कर सकते हैं, तो हम उनके धार्मिक विश्वासों के साथ ऐसा क्यों नहीं कर सकते?' ठीक है बाबरी मस्जिद को तोड़ना उसी समय जस्टिफाई किया जा सकता है, जब उसे तोड़ने वाले अपने को कट्टर धर्मान्ध कहने पर प्रसन्न हो, कश्मीर में पंड़ितों के साथ जो हुआ, वही पूरे देश में हम मुसलमानों के साथ करना चाहते है। ज़रूर करें, पर तब अपने को 'धर्मान्ध हिंदू' स्वीकार करें और लोकतंत्र तथा मानव अधिकार की बात न करे। हाँ, यदि आप लोकतंत्र की बात न करेंगे, तो संभवतः भारत ही न बनेगा।

प्रायः यह सवाल उठाया जाता है कि मुसलमान हिंदुओं की तुलना में धार्मिक विश्वासों के संदर्भ में अधिक कट्टर है, उदाहरण के लिए हिंदू समाज में राम, कृष्ण या अन्य किसी अवतार या देवता के बार में कैसी भी टिप्पणी की जा सकती है। बहस छेड़ी जा सकती है जो पैग़बर मुहम्मद साहब के बारे में नहीं छेड़ी जा सकती या मुसलमान उस पर बड़ी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करेंगे या बहस ही नहीं होने देंगे। इस तर्क के आधार पर कुछ बुद्धिजीवी मुस्लिम समाज और धर्म को हिंदु समाज और धर्म की तुलना में 'बंद' मानते है, उक्त तर्क के

आधार पर मुस्लिम समाज को 'क्लोज्ड़' या 'बंद' मानने वाले बुद्धिजीवी यह भूल जाते हैं कि हर धर्म का अपना इतिहास और संरचना होती है। सोचने की बात यह है कि तेरह सौ साल पुराने धर्म, जिनके सभी विश्वास लिखित है, 'रिकाडेर्ड' है उसकी तुलना ढाई तीन हजार साल पुराने धार्मिक विश्वासों की परंपरा कैसे की जा सकती है? निश्चित रूप से हज़ारों साल पुराने विश्वास, रिकोर्डड न होने के कारण तथा अन्य कारणों से बदल सकते हैं, इतने लचीले हो सकते है कि एक ही घर में अलग-अलग देवताओं की आराधना करने वाले अपने आपको हिंदू कह सकते हैं। यह तेरह सौ साल पुराने धर्म में असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है लेकिन फिर भी कुछ मुस्लिम परिवारों में आज तक शिया सुन्नी साथ मिल जाते हैं। इस्लाम-धर्म के अंदर चलने वाली अनेक बहसे हैं और धर्म के पक्षों पर मतभेद और मतांतर हैं। विभिन्न धर्मों के माननेवालों के बीच जो अंतर है उसके कारणों को समझने के लिए गंभीरता से वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है।

भारतीय मुसलमानों के पिछड़ेपन के अनेक कारण हैं, मुगल साम्राज्य के अंतिम दौर में अंग्रेज़ों का विरोध 1857 के बाद अंग्रेज़ों के साथ-साथ अंग्रेजियत के विरोध में बदल गया था बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों तक अंग्रेज विरोध के कारण तथा अपने सामंती-कृषक-दस्तकार संस्कारों की वजह से मुसलमान पश्चिमी शिक्षा में पिछड़ते चले गए सर सैयद आंदोलन में पचास वर्ष में जो मध्यम मुस्लिम वर्ग बनाया था वह 1947 में पाकिस्तान चला गया और 1947 के बाद जो मुस्लिम मध्यमवर्ग बना था वह युरोप, अमेरिका और बड़ी संख्या में खाड़ी के देशों में चला गया। इस तरह मुसलमान मध्यमवर्ग से वंचित ही रहे। जिस समाज में मध्यमवर्ग नहीं होता या कमज़ोर होता है वहाँ सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संभवतः कम ही होती है। यही कारण है कि आज मुस्लिम समाज तुलनात्मक दृष्टि से एक पिछड़ा हुआ समाज है। दस्तकारी के निर्यात आदि से या लघु उद्योग धंधों की बढ़ोतरी से जो कुछ पैसा मुसलमानों के पास आया है उसने उन्हें धनाढ्य तो बनाया हैं लेकिन मध्यमवर्गीय संस्कार नहीं मिल पाए है। सामाजिक आंदोलन नहीं है। जिनके अभाव में मुस्लिम समाज जितना गतिशील होना चाहिए था उतना नहीं है।

यह सच्चाई है कि मुस्लिम समाज में और विशेष रूप से उत्तर भारत के मुस्लिम समाज में परिवर्तन की गति बहुत धीमी है। मुसलमानों का एक बड़ा समूह निर्लिप्त और निश्चित भाव से जीवन बिता रहा है। राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली घटनाएं ही नहीं बल्कि देश के अंदर घटने वाली और उन्हें सीधे प्रभावित करने वाली घटनाओं के प्रति भी जैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए वह नहीं होती। यहाँ तक कि विभिन्न लोकतांत्रिक और वामपंथी संगठनों द्वारा संचालित सांप्रदायिकता विरोध के मुद्दों पर भी मुसलमानों से अपेक्षित सहयोग नहीं मिल पाता। असुरक्षा और भय के कारण मुसलमान 'धेटो' बन गए है। मुस्लिम-बहल इलाके प्रायः तंग, गंदे और सामान्य नागरिक सुविधाओं से वंचित हैं,

लेकिन वहाँ रहने वालों में अपनी साझी समस्याओं को दूर करने की कोई चिंता या कोई प्रयास नज़र नहीं आता। भारत में इंडोनेशिया के 'मुहम्मदी' समाज सेवी संगठन जैसी पहल की आवश्यकता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्थापित इस संगठन के लाखों सदस्य हैं। यह धार्मिक नहीं, केवल सामाजिक संगठन हैं, जो सैकड़ों शिक्षा संस्थाएं और अस्पताल आदि चलाता है। इन संस्थाओं में मुसलमानों के अतिरिक्त बौद्ध, ईसाई और हिंदू भी प्रवेश लेते हैं और लाभान्वित होते हैं।

भारतीय मुस्लिम समाज में यह ठहराव दिखाई देता है तो दूसरी ओर कहीं-कहीं कुछ क्षेत्रों में मुसलमान राष्ट्रीय जीवन में अपनी प्रभावशाली भूमिका निभाते भी दिखाई पड़ते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से दक्षिण भारत में मुस्लिम संगठनों ने सराहनीय काम किए है। उत्तर भारत में कई विश्वविद्यालय और कॉलेज ऐसे हैं, जिन्हें 'अल्पसंख्यकों' के संस्थान कहा जाता है। मुस्लिम मध्यमवर्ग बहुत धीमी गति से बढ़ रहा है, मनोरंजन-सूचना उद्योग में मुसलमानों की भूमिका बढ़ी है, व्यापार और उद्योग में भी बहुत धीमी गति से वे आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन यह गति देश के दूसरे धर्मावलंबियों की तुलना में बहुत धीमी ही नहीं, नगण्य-जैसी है इस गति का प्रभाव उनके सामाजिक सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन पर बहुत ही कम है।

मुस्लिम समाज में परिवर्तन की धीमी गति को तेज़ करने के लिए क्या किया जा सकता है? मुस्लिम समाज में सुधार कैसे संभव है? मुस्लिम समाज को प्रगतिशील बनाने के कुछ तथाकथित प्रयास एक प्रकार के छल से प्रेरित हैं। निश्चित रूप से उनका उलटा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए भारतीय मुसलमान 'शरीयत' के बारे में अन्य मुस्लिम देशों से अधिक संवेदनशील शायद इसलिए हो गए हैं कि उन्हें 'कामन सिविल कोड' अपने मौलिक अधिकारों के हनन जैसा लगने लगा है जबकि पर्दा प्रथा के प्रति दृष्टिकोण दूसरा है। मुस्लिम समाज या कोई भी समाज 'बाजार' की शक्तियों से अवश्य ही प्रभावित होता रहा है। ये शक्तियाँ मुस्लिम समाज में भी अपना काम कर रही है। मुस्लिम समाज में शिक्षा और जागरूकता ही परिवर्तन का रास्ता मज़बूत करेगी। इसके अलावा मुस्लिम समाज में मुसलमान बुद्धिजीवियों की भूमिका को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। हमारे देश का बुद्धिजीवी आमतौर पर मुस्लिम बुद्धिजीवी ख़ासतौर पर अपने समाज के आम लोगों से कटा हुआ है। आम मुसलमान या तो कट्टरपंथी धार्मिक नेतृत्व से जुड़ा है या विभिन्न राजनैतिक दल वोट लेने की राजनीति के तहत उनसे संपर्क बनाए हुए हैं। मुस्लिम बुद्धिजीवी शायद मुसलमानों के पास जाने से कतराता है कि ऐसा करने से कहीं उस पर सांप्रदायिक होने का 'लेबुल' न चिपका दिया जाए। यही कारण है कि मुसलमान बुद्धिजीवी राष्ट्रीय स्तर पर चलाए जाने वाले सामाजिक राजनैतिक आंदोलनों में तो दिखाई देता है लेकिन मुस्लिम बस्तियों में नज़र नहीं आता।

मुसलमानों की समस्याओं तथा उनमें शिक्षा और जागरूकता का प्रचार-प्रसार करने के लिए आज़ादी के बाद क्या कदम उठाए गए? मुसलमानों की मूल समस्याएं अशिक्षा, बेरोज़गारी आदि तो वही है। जो बहुसंख्यक समाज की है, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि मुस्लिम समाज, हिंदू समाज की तुलना में अधिक पिछड़ा हुआ है। मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कोई राष्ट्रीय नीति नहीं है। जहाँ तक मुसलमानों की सबसे बड़ी समस्या सांप्रदायिक दंगों का सवाल है, हम देखते हैं इसमें कोई कमी नहीं आई है, बढ़ोतरी हुई है। दंगों की रोकथाम, अपराधियों को दंडित करने, पीड़ितों को सहायता पहुँचाने के नाम पर सरकार या प्रशासन ने कोई नीति नहीं बनाई है। आश्चर्य की बात है कि दिल्ली के ख़ूनी दरवाज़े में एक लड़की के बलात्कारी को सज़ाए मौत दी जाए? लेकिन सांप्रदायिक दंगों में होने वाले बलात्कारों, हत्याओं, अपराधों पर यह बहस नहीं होती कि उनसे निपटने के लिए नए कानून बनाए जाना आवश्यक है। किसी भी राजनैतिक पार्टी ने सांप्रदायिकता के प्रति कोई गंभीर और प्रभावकारी कदम नहीं उठाए हैं, कारण क्या है? यह तो राजनैतिक दल ही बता सकते हैं? कल्पना कीजिए एक ऐसा समुदाय, जिसे कहीं भी, किसी वक्त बर्बर तरीक़े से कत्ल किया जा सकता हो, जिसकी महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया जा सकता हो, लोगों को ज़िंदा जलाया जा सकता हो और अपराधियों को कोई सज़ा न मिलती हो और 'समुदाय विशेष' से कहा जाता हो कि तुम देश से प्रेम करो, समाज से प्रेम करो, शांति से रहो, अपनी जड़ताएं समाप्त करो, तो 'संप्रदाय विशेष' की क्या प्रतिक्रिया होगी? इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय सामाजिक 'राजनैतिक व्यवस्था' का मुसलमानों के प्रति व्यवहार उतना ही अमानवीय और फ़ासीवादी है, जितना दलितों और आदिवासियों के प्रति है।

अपने अधिकारों की सुरक्षा मुसलमान स्वयं नहीं कर सकते, क्योंकि वे कमज़ोर हैं। भारतीय मुस्लिम समाज सामंती-कृषक-दस्तकार समाज व्यवस्था के मूल्यों पर टिका हुआ है। शिक्षा और जागरूकता कम है, राष्ट्रीय संस्थानों में भागीदारी नगण्य है, नीतियाँ बनाने और शासकीय निर्णय करने में उसका हिस्सा शून्य के बराबर है। वह नेतृत्व-विहीन भी है। जो नेता है भी, तो वे धर्म के नाम पर रोटियाँ सेकते हैं। उन्हें मुसलमानों के जीवन और उनके भविष्य से कोई लेना-देना है नहीं। ऐसे समुदाय से हमदर्दी करनी चाहिए या घृणा?

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुसलमानों की स्थिति विचित्र है। उनकी अधिकतर समाज व्यवस्थाएं सामंती-धार्मिक किस्म की है, लेकिन उनके पास अपार प्राकृतिक साधन हैं, जिन पर पश्चिम किसी भी तरह अपना अधिकार जमाना या जमाए रखना चाहता है। अन्य देशों में अपना प्रभुत्व जमाए रखने के लिए पश्चिम के पास सैन्य शक्ति है, लेकिन उसी के साथ-साथ पश्चिम अपने देशों के जनमत पर भी विशेष ध्यान देता है, पश्चिम मुस्लिम देशों और मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता, अमानवीय रीति-रिवाजों, पिछड़ेपन और

सहिष्णुता को प्रचारित करके ही अपनी जनता से मुस्लिम देशों में हस्तक्षेप करने का 'लाइसेंस' प्राप्त करता है। पश्चिम द्वारा मुस्लिम समाजों की विद्रूपता को अतिरंजित करके पेश करने वाले कार्यक्रम भारत में मुस्लिम विरोध को एक वैधानिकता प्रदान करते हैं।

इस आलेख का उद्देश्य न केवल मुस्लिम समाज की गहरी पड़ताल करना है, बल्कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदायों के बीच संवाद की स्थिति भी पैदा करना है। निश्चित रूप से जानकारी के अभाव में अविश्वास पैदा होता है, जिसके कारण सांप्रदायिक शक्तियों को घृणा और उन्माद फैलाने का मौका मिल जाता है। सांप्रदायिक व्यक्तियों ओर दलों को छोड़कर पूरा देश यह मानता है कि सांप्रदायिकता और हिंसा से किसी तरह की कोई समस्या नहीं सुलझ सकती, बल्कि सांप्रदायिकता देश के विकास, एकता और अखंडता के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है।

वर्तमान परिस्थितियों में सवाल यह भी है कि मुसलमानों को क्या करना चाहिए। इतना तय है कि मुसलमान भारतीय लोकतंत्र में सबसे बड़े अल्पसंख्यक की भूमिका नहीं निभा रहे है, वे पूरे भारतीय समाज और उसकी समस्याओं से अपने आपको जुड़ा नहीं महसूस करते हैं, वे अभी तक यह नहीं सीख पाए हैं कि लोकतंत्र में अपने अधिकारों की लड़ाई कैसे लड़ी जाती है तथा बहुसंख्य समाज के साथ रिश्ते कैसे बनाए जाते हैं। वे आज के समय की आवश्यकताओं और उसमें 'सरवाइव' करने के तरीके नहीं जानते हैं, अलग-थलक बस्तियों में बड़े समाज से कटे हुए और लगातार अपनी पहचान बनाए रखने की कोशिश में हलकान वे रेगिस्तान के शुतुर्मुर्ग जैसे हो गए है जो रेत में गर्दन छिपाकर यह समझता है कि सुरक्षित हो गया है। मुसलमानों को रेत से अपना सिर निकालना होगा ओर अपने ही नहीं। देश और समाज के सामने जो खतरे हैं उनसे दो-चार होना पड़ेगा। जब तक मुसलमान देश में चलने वाली लोकतांत्रिक शक्तियों से अपने को नहीं जोड़ेगे तथा उसमें उनकी सक्रिय भागीदारी नहीं होगी तक तक उनका अस्तित्व खतरे में रहेगा मुस्लिम समाज में शिक्षा, जागरूकता, खुलेपन और आज की अन्य चुनौतियों को स्वीकार करने की हिम्मत होनी चाहिए। मुसलमानों को धर्म और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति एक स्पष्ट समझ बनाने की आवश्यकता है। आज स्थिति यह है कि धर्म और सामाजिक दायित्व और भूमिका एक-दूसरे से गड्डमड्ड हो गए हैं। यहाँ तक कि मुसलमानों ने अपना एक 'ड्रेसकोड' तक बना लिया है जबकि उनके लिए विचारणीय मुद्दा यह है कि किसी भी समाज में अपनी अलग पहचान 'ड्रेसकोड' से नहीं बनती उसके लिए अधिक श्रम करना पड़ता है, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियाँ प्राप्त करना पड़ती हैं।

मुस्लिम समाज में सामाजिक आंदोलन नहीं के बराबर है, छोटे स्तर पर ही सही, पर शिक्षित युवा वर्ग में समाज सुधार के क्षेत्र में पहल करने की बड़ी आवश्यकता है। इसी के साथ मुसलमान पता नहीं क्यों राष्ट्रीय स्तर पर चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों से बहुत

दूर हैं, ब्लाक स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर चलने वाली आर्थिक, सामाजिक योजनाओं में सम्मिलित होने की आवश्यकता है, लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में केवल अपने परिवार, मोहल्ले, बिरादरी, धर्मावलंबियों तक ही अपनी चिंताओं को सीमित रखने वाले लोग प्रायः मुख्यधारा से कट जाते है जिसका उन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। मुसलमानों का भारतीयकरण तो एक बकवास और उत्तेजित करने वाला नारा था, लेकिन वास्तविकता यह है कि देश की लोकतांत्रिक प्रणाली और राष्ट्रीय विकास प्रक्रिया में यदि मुसलमान भाग न लेंगे, तो उन्हें बहुत अधिक नुकसान होगा, ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में लोकतंत्र किसी अल्पसंख्यक समुदाय के कारण ही नहीं है। बहुसंख्यक समाज को यह लगना चाहिए कि लोकतंत्र को बचाने, बढ़ाने में उसके जो प्रयास है उनमें अल्पसंख्यक समुदाय पूरी तरह उनके साथ है।

❑❑❑

बाबा हिरदाराम पुस्तक सेवा समिति

जन सहयोग से जन–जन तक पुस्तक

समिति द्वारा न्यून मूल्य पर सुरुचिपूर्ण, उद्देश्यपरक एवं समाज को प्रेरित–प्रोत्साहित, उद्वेलित करती पुस्तकें पाठकों को तभी पहुँच सकती हैं जब समिति का अर्थ रीढ़ मजबूत हो। हम आभारी हैं हमारे सुधि दानदाताओं, सहयोगियों और शुभचिन्तकों के, जिनके बूते यह प्रयास संभव हो सका है।

हमारा सादर आमंत्रण है उन बंधुओं को जो पुस्तक में रुचि रखते हैं, आर्थिक दृष्टि से सक्षम हैं एवं श्रद्धावान हैं, वे आगे आएं और समिति को मुक्त हस्त से दानराशि उपलब्ध करायें। यह एक महापुस्तक यज्ञ है, जिसमें आपकी छोटी सी भी आहूति यज्ञ सफल होने का बायस बन सकती है। इस उद्देश्य हेतु आप अन्य लोगों को भी प्रेरित कर सकते हैं।

बाबा की किरपा हम सब पर बनी रहे।

हरगुन आसनदास नेभनानी
अध्यक्ष
93515–10909

गजेन्द्र रिझवानी
सचिव
93145–07094

असग़र वजाहत

जन्म : 1946, फतेहपुर, उत्तरप्रदेश। **शिक्षा** : अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए., पीएच.डी. और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली से पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च। जामिया मिल्लिया इस्लामिया के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त के पश्चात अब यायावरी और लेखन।

प्रमुख प्रकाशन, उपन्यास : सात आसमान, गरजत बरसत, कैसी आगी लगाई, बरखा रचाई, धरा अँकुराई, रात में जागने वाले, पहर-दोपहर, मन माटी। **कहानी** : मैं हिंदू हूँ, दिल्ली पहुँचना है, स्विमिंग पूल, सब कहाँ कुछ, डेमोक्रेसिया, भीड़तंत्र।

यात्रा आख्यान : चलते तो अच्छा था, पाकिस्तान का मतलब क्या, अतीत का दरवाजा। **नाटक** : जिस लाहौर नइ वेख्या ओ जम्याइ नई, फिरंगी लौट आए, इन्ना की आवाज, वीरगति, समिधा, अकी, सबसे सस्ता गोश्त, गोडसे@गांधी.कॉम। **निबंध** : सफाई गंदा काम है, ताकि देश में नमक रहे। **संस्मरण** : कथा से इतर। **आलोचना** : हिंदी-उर्दू की प्रगतिशील कविता। **सम्मान** : कथा यूके सम्मान, संगीत नाटक अकादमी सम्मान, संस्कृति अवार्ड और हिन्दी अकादमी दिल्ली के सर्वोच्च शिखर सम्मान सहित अनेक पुरस्कार-सम्मान।

संपर्क : 79, कला विहार, मयूर विहार, फेज 1, दिल्ली-110 091
फोन - +91-11-22744579, 98181-49015
ई-मेल : awajahat45@gmail.com

आवरण चित्र : डॉ. हेमन्त द्विवेदी